आर्य्यभटीयम्

ज्योतिःशास्त्रम् ।

परमेश्वराचार्य्यकृतटीकयासमलङ्कृतम्

क्षत्रियकुमारेण श्रीमदुदयनारायणवर्मणा
नागरीभाषयाऽनुवादितम्

तच्च

मधुरापुरस्थ–शास्त्रप्रकाश–कार्य्यालये
(डा० विद्दूपुर, मुजफ्फरपुर)
नाम्निस्थाने प्रकाशितम्

संवत् १९६३ सन् १९०६ ई०

THE
ARYA BHATIYA
or
ANCIENT SANSKRIT ASTRONOMICAL WORK

by

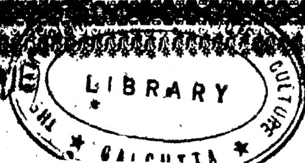
Arya Bhata with a sanskrit commentary
of Prameshwaracharya translated into
Nagari and published

by

Udaya Narain singh at shastra Publishing office
Madhurapur, Bidhupur, Mozaffarpur.

Printed at Brahma Press Etawah.

मूल्य ... रस्यस्वत्वंनायत्तीकृतम्



ओ३म्



श्रीयुत मान्यवर क्षत्रियवंशावतंस परमोदार सनातन आर्यधर्म्मरक्षक श्रीमहाराजाधिराज सर नाहर सिंह बहादुर शाहपुराधीशेष्वित-उदयनाराय-यणसिंहस्य कोटिशोनतय स्स्फुरन्तुतराम्

भो!

आप ने सनातनआर्य्यधर्म्म की उन्नति करके हम भारत वासियों का परम उपकार किया है। ईश्वर श्रीमान् जैसे धर्म्मरक्षक, दानशील, आदर्शपुरुष और आर्य्यग्रन्थों के उन्नायक महाराजों की प्रतिदिन संख्या बढ़ावे।

श्रीमान् की रुचि स० आ० ध० की ओर देख कर मैंने वेद के छः अङ्गों में से नेत्ररूपी वेदाङ्ग ज्योतिष के-उस अपूर्व ग्रन्थ का भाषानुवाद किया है जिस में आज १४०० वर्ष पूर्व ही से पृथिवी-भ्रमण-लिख रक्खा है।

यह आर्यभटीय वा आर्यसिद्धान्त ग्रन्थ संस्कृत टीका सहित जर्म्मन देश में छपा था-आज तक भारत वर्ष में इस की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था मैं ने बड़े परिश्रम से इसे जर्म्मन देशान्तर्गत लिपजिक् स्थान से मंगवा कर सटीक सानुवाद एवं विस्तृत भूमिका सहित छपवाया है।

इस सटीक सानुवाद वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थ को मुद्रित करा श्रीमानों के कर कमलों में विनयपूर्वक अर्पण कर आशा करता हूं कि श्रीमान् इस को स्वीकार कर मुझे अन्याय आर्षग्रन्थों के सानुवाद प्रकाशित करने में उत्साहित करेंगे।

शास्त्रप्रकाश-कार्यालय
स्थान-मधुरापुर, विद्दूपुर
जि० मुजफ्फरपुर

श्रीमतामशाकारी-
क्षत्रिय कुमार—
उदयनारायणसिंह

ओ३म्

प्रस्तावना ।

वेद आर्य्यशास्त्रों का शिरोभूषण है । वेद सम्पूर्ण आर्यशास्त्रों की अपेक्षा प्राचीन और सर्व शास्त्रों का एकमात्र आकर कह कर प्रसिद्ध है । विदेशीय-जर्म्मन देश वासी पं० मक्षमैक्ष मूलर साहब कहते हैं कि-*वेद सब विद्याओं का मूल है । अङ्ग सहित वेद ज्ञान विना-भारतवर्षीय किसी आर्य्यग्रन्थ पर कुछ लेख लिखना बहुत कठिन है । आज ऐसे अमूल्य रत्न वेद का यथावत् प्रचार न होने के कारण हमारे देश में प्रति दिन मत मतान्तरों तथा फूट की वृद्धि होती जाती है और लोगों को वैदिक धर्म से अश्रद्धा होती जाती है । इस वेद के तात्पर्य समझने के लिये हमारे ऋषियों ने इस के छः अङ्ग रचे हैं । इन शिक्षा आदि छः अङ्गों में से-वेदाङ्ग ज्योतिष के न जानने से हम भारतवासिगण वेद, शास्त्र, पुराण प्रतिपादित गूढार्थ के समझने में असमर्थ होकर वेद, ब्राह्मण, पुराण, तन्त्र आदि प्रतिपादित ज्योतिष मूलक आध्यात्मिक वर्णन का उलटा वा निन्दित आशय समझ कर हम अपने ऋषियों को गुरुतल्पगामी, किन्हीं को चोर, ब्रह्मा को अपनी कन्या के पीछे मैथुनार्थ दौड़ना, रासलीला, यमयमी सम्वाद (भाई बहन का सम्बन्ध) श्रीकृष्ण जी का व्रजाङ्गनाओं के साथ नाचना आदि अकर्त्तव्य कर्म करना, गौतम अहल्या की कथा, चन्द्रमा की ३३ कन्या, समुद्र-मथन आदि का युक्ति-युक्त तात्पर्य्य नहीं समझ समझा सकते । आज हम उन्हीं उपरोक्त आलङ्कारिक लेखों में से-दो तीन लेखों का असली तात्पर्य पाठकों को सुनावेंगे-जिस से हमारे पाठक यह समझ जावेंगे कि निस्सन्देह असली "सिद्धान्त-ज्योतिषशास्त्र" के जानने ही से वेद, ब्राह्मण, पुराण, आदि प्रोक्त उपाख्यानों की सङ्गति लगा सकेंगे। अब हम यहां पहिले 'समुद्रमथन,' 'रासलीला' और 'वस्त्र हरणलीला' का रहस्य कह कर-"आर्य्यभटीय" पुस्तक का अनुवाद करेंगे।

उदयनारायणसिंह—अनुवादक

Every one acquainted with indian literature must have observed how impossible it is to open any book on Indian subjects without being thrown back upon an earlier authority; which is generally acknowledged by the Indians as the basis of all thier knowledge whether sacred or profane. This earlier authority which we find alluded to in theological and philosophical works as well as in poetry in codes of law in astronomical, grammatical, matrical and lexicographical compositions is called by one comprehensive name the Veda. (P. Max Muller H of Ancient Sanskrit Literature, P. 2)

समुद्र-मन्थन ।

"ऋषीणां भारतीभाति सरला-गहनान्तरा ।
धीरास्तत्तत्व मृच्छन्ति मुह्यन्ति प्राकृता जनाः" ॥

भा०ः-अर्थात् प्राचीन ग्रन्थों की वाक्य-शैली ऊपर से तो बहुत सरल मालूम होती है परन्तु उन के आशय बहुत कठिन हुआ करते जिन को विद्वान् लोग तो समझ लेते पर प्राकृत पुरुष मुग्ध होकर अर्थ का अनर्थ करने लगते हैं ॥

समुद्र-मन्थन उपाख्यान महाभारत के आदि पर्व में १७-से १९ अध्यायों में इस प्रकार वर्णित है कि:-

एक समय महात्मा देवगण सुमेरु पर्वत के ऊपर एकत्र होकर अमृत प्राप्ति के लिये परस्पर विचार करने लगे। इसी अवसर में परम देव नारायण आकर बोले " हे पितामह! देवगण और असुरगण मिलकर समुद्र मथन में प्रवृत्त हों। इस के अनुसार देव और असुर गण मन्थन-दण्ड के योग्य मन्दर पर्वत को उखाड़ने लगे, परन्तु वे कृत कार्य्य न हो सके। इस के बाद परम देव नारायण की आज्ञानुसार अनन्त देव ने मन्दर पर्वत को जड़ से उखाड़ा और देवगण मन्दर पर्वत को लेकर समुद्र के तीर पर आये। अमृत पाने की आशा में समुद्र, अपने मन्थन में सम्मत हुआ-और कूर्मर राज ने मन्दर पर्वत को अपने ऊपर धारण करना स्वीकार किया ॥

देव राज इन्द्र, कूर्म के पीठ पर ' मन्दर ' रक्ख कर मन्थन रज्जु (महने की डोरी) वासुकी (सर्प) द्वारा मन्दर को बांधकर समुद्र मन्थन में प्रवृत्त हुए। असुरों ने वासुकी के गले के उपरले भाग को पकड़ा। और देवगण ने पूच्छ की ओर पकड़ा। विलोड़न करते २ मन्दर पर्वत पर के बड़े २ वृक्षों और ओषधियों से निर्यास और रस समुद्र जल में निपतित होने लगा और अमृत के तुल्य रस स्रोत में देवताओं का शरीर आप्लुत होने लगा, देवगण अमर हुए। अपूर्व रस से मिश्रित हो समुद्र का जल दूध हो गया और दूध से घृत उत्पन्न हुआ।

समुद्र मन्थन में पहिले दूध से चन्द्रमा उत्पन्न हुए और घृत से लक्ष्मीदेवी सुरादेवी, उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा और अत्यन्त उज्ज्वल कौस्तुभ मणि क्रमशः उत्पन्न हुए। कौस्तुभ मणि परम देव नारायण ने अपने हृदय में धारण किया।

पारिजात और सुरभि उत्पन्न हुई। लक्ष्मी, सोम, सुरा और उच्चैःश्रवा आदित्य मार्ग में देवताओं के निकट गये इस के। अनन्तर धन्वन्तरि अमृत से भरे श्वेतकमण्डलु हाथ में लिये ऊपर हुए। और दान्त में चारों वेद से विभूषित 'ऐरावत' हाथी निकला। देवराज ने ऐरावत को लिया। अन्त में कालकूट विष उत्पन्न हुआ। हलाहल विष के गन्ध से तीनों लोक मोहित हुआ। ब्रह्मा की आज्ञा से महादेव ने इस विषपान कर लिया। तब से महादेव जी का नाम 'नीलकंठ' हुआ। इधर अमृत पान के अभिलाषी देवता और असुरों में युद्ध उपस्थित हुआ, परम देव नारायण ने मोहिनी रूप धर कर असुर के निकट उपस्थित हुए। इस मोहिनी मूर्त्ति को देख कर विमूढ़चित्त असुर गण परिवेशनार्थ अमृत के भाण्ड को मोहिनी के हाथ में समर्पण करने में सम्मत हुए। अमृत को हर कर मोहिनी संग्राम से चल निकली। संग्राम समय देवगण मोहिनी के हाथ के अमृत को पान करने लगे। इसी अवसर में देवता का रूप धारण कर छिपा हुआ 'राहु' अमृतपान करने में प्रवृत्त हुआ। किन्तु चन्द्रमा और सूर्य ने इस की चुगली कर इस की कपटता को प्रकाशित कर दिया और परम देव नारायण ने 'सुदर्शन' (चक्र) द्वारा राहु के शिर को काट डाला।

कटा हुआ राहु का मस्तक आकाश मण्डल में उड़ कर पृथिवी पर गिर पड़ा। जो वैर निर्यातनार्थ (बदला लेने के लिये) अब तक बीच २ में राहु, चन्द्रमा और सूर्य को ग्रस लेता है जिस का नाम ग्रहण है ॥

देवासुर समर में स्वयं नारायण ने प्रवेश कर सुदर्शन द्वारा असुर दल को छिन्न भिन्न कर दिया और असुर मुण्ड भूमि पर शोभा देने लगे। मरने से अवशिष्ट असुरों ने रण में हार कर पृथिवी और समुद्र जल में प्रवेश किया। देवराज प्रमुख देवताओं ने अमृत भाण्ड अर्जुन को प्रदान किया।

श्रीमद्भागवत के ८ म स्कन्ध में ५ म अध्याय से ११ वें अध्याय तक समुद्र मथन का वर्णन है। भागवत के मत से जहां २ भेद दीख पड़ता है, उस का सारांश नीचे लिखा जाता है। महाभारत में देवताओं को अमृत पीने की इच्छा क्यों हुई ? इस का कारण नहीं लिखा है; किन्तु श्रीमद्भागवत में लिखा है कि अत्रि के पुत्र शङ्करांश महर्षि दुर्वासा के अभिशाप से देवराज इन्द्र श्रीभ्रष्ट हुए। असुर युद्ध में देव-सेना हार गयी। इन्द्रादि देवगण ने स्वर्गराज्य से ताड़ित हो भूतल और पाताल पर आकर आश्रय लिया।

असुर गण ने स्वर्ग राज्य पर अपना अधिकार जमाया। यज्ञ आदि एक मात्र बन्द हो गया। भूख से पीड़ित इन्द्र आदिकों ने निरुपाय हो सुमेरु पर्वत की चोटी पर जाय ब्रह्मा की शरण लियी। और ब्रह्मा, प्रमुख देवगण की स्तुति से सन्तुष्ट हो परमदेव नारायण ने देवराज इन्द्र को उपदेश दिया कि अमृत-पान से बलवान् न हो कर तुम असुरों गण को रण में जीत नहीं सकते।

और देवता एवं असुरों के मिले विना समुद्र मन्थन से अमृत मिलने का अन्य दूसरा उपाय नहीं। इसलिये असुरगण के साथ कपट सन्धि कर दोनों दल मिलकर समुद्र मन्थन करो। समुद्र मन्थन से उत्पन्न अमृत परिवेशन के समय में असुरों को ठग कर देवताओं को अमृत पान कराऊंगा। नारायण के आदेश से इन्द्र नें असुर पति रैवत मनु-पुत्र वलि राजा के साथ सन्धि स्थापन कर समुद्र मन्थनार्थ उद्योग किया। इस के बाद देवता और असुर गण ने मन्दर पर्वत को उखाड़ा और गरुड़ के पीठ पर मन्दर को रख कर समुद्र के किनारे ले आये। समुद्र मन्थन के पहिले हलाहल विष और क्रम से सुरभि, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, ८ दिग्गज, और अभ्रमु प्रभृति ८ हस्तिनी, पारिजात पुष्प, अप्सरा, कमला देवी, वारुणी, कलस हस्त धन्वन्तरि ऊपर हुए। राहुबध उपाख्यान इस पुराण में भी है।

विष्णुपुराण के ९ म अंश, ९ म० अध्याय में समुद्र मन्थन का वर्णन है॥० विष्णुपुराण के मत से समुद्र मन्थन में पहिले सुरभि, क्रम से वारुणी, पारिजात, शीतांशु चन्द्रमा, हलाहल विष, कमण्डलु हस्त धन्वन्तरि, और श्रीदेवी उत्पन्न हुई। किन्तु विष्णुपुराण में राहुवध का वर्णन नहीं है। ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के प्रकृति खण्ड के ३८ वें अध्याय में समुद्र मन्थन का वर्णन है। ब्रह्माण्ड पुराण के मत से समुद्र मंन्थन में सब से पहिले धन्वन्तरि और क्रम से अमृत, उच्चैःश्रवा, नाना रत्न, ऐरावत, लक्ष्मीदेवी, सुदर्शन चक्र निकले हुए। इन के अतिरिक्त अन्यान्य पुराणों में भी समुद्रमन्थन का वर्णन है।

पुराणों में समुद्र मन्थन का वर्णन है कहने से अशिक्षित लोगों में इस व्यापार को रूपक कह कर ग्रहण करना नहीं चाहते। किन्तु उपाख्यान के सम्भव या असम्भव होने की समालोचना करने पर इस की रचना अर्थवाद से भरा है यह सहज ही में सिद्ध होता है।

पहिले तो मन्दर पर्वत का उखाड़ना कैसे सम्भव होगा? दूसरे मथने की रस्सी वासुकी (सर्प) मथते समय जब उसी वासुकी शेष ने मन्दर पर्वत को

धारण किया तो उस समय पृथिवी किस पर थी ? (क्योंकि पुराण में लिखे अनुसार लोग समझते हैं कि शेष नाग पर पृथिवी ठहरी है) तीसरे, पृथिवी पृष्ठ २० करोड़ वर्ग माइल है, उस में १५ करोड़ माइल में समुद्र विस्तृत है। इस सुविस्तीर्ण समुद्र का मन्थन कैसे सम्भव हो सकता ? चौथे, विष्णुपुराण के मत से महर्षि दुर्वासा प्रदत्त पारिजात माला देवराज इन्द्र ने ऐरावत के शिर पर पहिना दिया, ऐरावत कर्त्तृक महर्षि प्रसादभूत यह पारिजात माला भूमि के ऊपर फेंकी गई इस से महर्षि दुर्वासा के क्रोध की उत्पत्ति हुई। और उसी क्रोध के कारण महर्षि का शाप हुआ। उस के पश्चात् समुद्र मन्थन में ऐरावत की उत्पत्ति हुई यह क्योंकर सम्भव होगा ? पञ्चम, महाभारत में लिखा है कि समुद्र मन्थन से निकले हुये रत्न आदित्य मार्ग से (अयन मार्ग से) देवताओं के समीप गये। यदि देवगण ने पृथिवी पर आकर पृथिवी पर के मन्दर पर्वत को उखाड़ कर पृथिवी पर के समुद्र के तीर में रहकर समुद्र मन्थन किया, तो मथने से उत्पन्न रत्न आदि आकाशस्थ अयन मार्ग में किस प्रकार देवताओं के निकट जासकते ? सुतरां यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि इस उपाख्यान में अवश्य ही कोई अति गूढ़ अभिप्राय है।

वेद पढ़ने से हमे इस बात का ज्ञान हुआ है कि 'समुद्र,' 'सागर,'। शब्दों से अधिकतर स्थानों में जल का वर्णन किया गया है।

और वेदाङ्ग + निरुक्त शास्त्र में (१४।१५) "अन्तरिक्ष नामानि सगर समुद्र" ऐसा उल्लिखित है। "समुद्रात् अन्तरिक्षात् इति सायनः"।

और पुराण में जल शब्द कारण वारि अर्थ में व्यवहृत दृष्ट होता है *सुतरां महर्षियों ने पुराणों में समुद्र मन्थन समय में समुद्र और सगर शब्द को आकाश अर्थ में व्यवहार किया है ऐसा बोध होता है। और समुद्र मन्थन अर्थ से आकाशस्थ पदार्थ का मन्थन समझना उपाख्यान को सङ्गत और संलग्न होना-बोध होता है। और मन्थन से निकले हुए रत्न आदि देवता के निकट अयन मार्ग से जा सकते। समुद्र मन्थन उपाख्यान का प्रकृत अर्थ यह है कि समुद्र नाम अन्तरिक्ष और मन्थन नाम–खगोलस्थ दिव्य ग्रह, नक्षत्र आदिक के रूप, गति स्थिति आदि का पता लगाना (Astronomical deep enquiry) से

+ सुदासे दंस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विनी । रयिं समुद्रा दुत दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् । ऋग्वेदे ।.१ । ४७ । ६ ।

*उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले। ब्रह्म वै० पु० प्रकृतखण्डे २।५०

(ज्योतिष शास्त्र का अनुशीलन)। वेद विहित याग, यज्ञादि के समयादि निर्णय के लिये ज्योतिष शास्त्रामृत की प्राप्ति के लिये देव (प्रकाश) और असुर (अन्धकार) में मेल हुआ। दोनों पक्ष ने मिलकर आकाश मन्थन किया मन्दर पर्वत स्वरूप 'क्रान्तिपात विन्दु' में सर्प की आकार वाली रेखा संयोजित हुयी, और क्रम से गोलार्द्ध रूपी दिन रात आविर्भूत और तिरोभूत हो, गोलक विलोड़ित और मथित हुआ क्रम से ज्योत्स्ना रूपिणी (चान्दनी) "लक्ष्मी" के साथ चन्द्रमा की स्थिति स्थान, राशि चक्र में निर्णीत हुई। और खगोल के बीच "सुरभि" (गौ) रूपिणी पृथिवी की अवस्थिति स्थान निराकृत हुई। "कौस्तुभ" रूप "ध्रुव" तारा विराट मूर्त्ति के हृदय में स्थापित हुई। और ग्रह नक्षत्रगण राशि चक्र के यथा स्थान में सन्निविष्ट हुये। और " सावन " काल यथोचित रूप से निर्णीत होने लगा। याग, यज्ञादि (तिथि आदि विचार पूर्वक) अनुष्ठित होने लगे। "धन्वन्तरि" रूप से कुम्भ राशि धनु राशि के ३० अंश अन्तर पर स्थापित हुआ। महर्षि पराशर ने विष्णुपुराण के समुद्र मन्थन के उपसंहार में यों लिखा है कि:-

"ततः प्रसन्नभाः सूर्य्यः प्रययौ स्वेनवर्त्मना।
ज्योतींषिंच यथामार्गं प्रययुर्मुनिसत्तम ! ॥" १।९।११२॥

उपसंहार में वक्तव्य यह है कि, प्राचीन समय में सब जातियों में सूर्य्य स्वामी और चन्द्रमा पत्नी रूप से परिगणित होते थे और वेद में भी यह स्पष्टतया लिखा है:-

"समिथुनंउत्पादयते रयीञ्चप्राणञ्च।
एते मे वहुधा प्रजाः परिष्यतः॥" इतिप्र० उपनिषदि ॥४॥

अर्थः-प्रजा सृष्टि कामना से ब्रह्मा ने चन्द्र, सूर्य्य को स्त्री पुरुष रूप से सृष्टि किये और सूर्य्य चन्द्र से मनु और मनु से मानव जाति सृष्टि हुई।

फलित ज्योतिष के मत से यद्यपि चन्द्रमा स्त्री-ग्रह कह कर परिगणित है किन्तु चान्द्रमास गणनार्थ चन्द्र, नक्षत्र वा तारापति कह कर परिगणित होता चन्द्रमा का इसप्रकार स्त्री एवं पुरुष दोनों प्रकृति की रक्षा के लिये पौराणिक गण 'चन्द्रविम्ब' और चन्द्रमा की ज्योति को स्वतन्त्र करने में वाध्य हुए। समुद्र मन्थन से चन्द्रविम्ब का लक्ष्मी सहज नाम हुआ, जैसेः--

"दाक्षायिणीपतिर्लक्ष्मी-सहजश्च सुधाकरः"। शब्दरत्नावली।

चन्द्रविम्ब तारापति हुए। और लक्ष्मधारिणी ज्योत्स्नारूपिणी चन्द्रिमा (चान्दनी) लक्ष्मी देवी विष्णुप्रिया या सूर्य-पत्नी हुयी। वैदिक प्राचीन पद्धति और पौराणिक नवीन-पद्धति, दोनों ही की समानता हुयी।

अब भी "ग्रीनलैण्ड" वासी इस्किमो जाति में यह विश्वास है कि सूर्य अपनी पत्नी चन्द्रिमा के पीछे २ युगयुगान्तर से दौड़ रहे हैं। किन्तु कभी चन्द्रिमा को स्पर्श नहीं कर सके। और इन दोनों की यह क्रीड़ा उपलक्ष ही में पृथिवी पर दिन रात होते हैं।

सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष शास्त्र में जो 'ग्रहण' के कारण दिखला ये गये हैं उस का स्थूल तात्पर्य यह है कि 'अयनवृत्त' परस्पर तिर्यक्भाव से अवस्थित है। चन्द्रमा के कक्षा वृत्त का एक अर्द्धांश अयन वृत्त के उत्तर में और अपर अर्द्धांश 'अयन वृत्त' के दक्षिण में अवस्थित और 'अयन मण्डल' और चन्द्रकक्षा के 'छेद विन्दुद्वय' को " पात " कहते हैं। इस पात के दोनों विन्दु की योग रेखा पर अमावास्या के अन्त में चन्द्र और सूर्य के अवस्थित होने से सूर्यग्रहण होता है। इस पातविन्दु-द्वय की योग रेखा के मध्यभाग में सूर्यविम्ब अवस्थित रहते हैं। इस 'योगरेखा' को "राहु" कल्पना करने से सूर्य विम्बरूप " सुदर्शन " (चक्र) द्वारा " राहु " दो खण्डित होता है। और पात के दो विन्दुओं में से एक को "राहु" और दूसरे विन्दु को "केतु" कहते हैं। या इन दोनों विन्दुओं को " राहु " और सांप की देह की नाईं पृथिवी छाया मध्ये चन्द्र प्रवेश करने से 'चन्द्रग्रहण' होता है ऐसा कहने में पृथिवी छाया को 'केतु' कहना अनुचित नहीं। ऐसा अर्थ करने पर समुद्र मन्थन में राहु का अमर होना और 'सुदर्शन' द्वारा राहु का शिर कटना, दोनों ही व्यापार सङ्गत और वेदाङ्गीभूत ज्योतिष शास्त्रानुमोदित होते हैं।

समुद्रमथन-उपाख्यान में मेरु पर्वत, नारायणदेव, देव, असुर, अनन्तदेव, समुद्र, अमृत, कूर्म, इन्द्र, वासुकी, दूध, घृत, सुरभि, पारिजात-पुष्प, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, वारुणी, सोम, लक्ष्मी, हलाहल-विष, नीलकण्ठ, अमृतभाण्ड, अर्जुन, दिति अदिति और धन्वन्तरि आदि, शब्दों की व्याख्या कियी गयी है, परन्तु वेद, निघण्टु, ब्राह्मणग्रन्थ, १८ पुराण तथा वाल्मीकीय आदि उल्लिखित-समुद्रमथन पर-विचार अलग पुस्तकाकार छपेगा- यहां विस्तार भय से-संक्षिप्त लिखा गया।

श्रीकृष्णलीला की आधिदैविक व्याख्या की अवतरणिका ॥

चन्द्रमा पौराणिक देवता हैं। ३३ नक्षत्र पुराणों में चन्द्रमा की ३३ स्त्री अश्विनी, भरणी, प्रभृति, (नक्षत्र) चन्द्रमा का घर या गृहिणी हैं। इस स्थल में रूपक अति जाज्वल्यमान है किसी को समझने में कष्ट नहीं होता किन्तु पुराणों में ऐसे अनेक (हमारे शास्त्रों में प्रायः तीन प्रकार के वर्णन हैं एक आध्यात्मिक दूसरा आधिदैविक और तीसरा आधिभौतिक) रूपक हैं, जिनका रूपकत्व भाव सहसा उपलब्धि नहीं किया जाता। श्रीकृष्ण नामक कोई व्यक्ति थे नहीं ऐसा कोई प्रमाण अब तक नहीं मिला है, प्रत्युत ऐसे प्रमाण तो भले ही पाये जाते हैं कि श्रीकृष्ण नामक एक अच्छे आदर्श पुरुष वा पुरुषोत्तम सच्चरित्र व्यक्ति हुए हैं जिन का इतिहास महाभारत में है। एवं श्रीकृष्ण सम्बन्धी इस इतिहास के अतिरिक्त भागवत आदि पुराणोक्त ऐसे निन्दनीय उपाख्यान हैं जिन को लेकर विधर्मी लोग हमारे वेदोक्त स०आ० धर्म तथा हमारे महात्माओं पर कलङ्क दिखलाते हैं जिनका यथोचित समाधान हमारे भाई लोग न जानने के कारण नहीं कर सकते। वेद तथा वेदाङ्ग आदि वैदिक ग्रन्थों के देखने से पुराणोक्त उपाख्यानों का तात्पर्य समझ में आता है। जैसा कि पाठकों को वक्ष्यमाण उपाख्यान से ज्ञात होगाः—वैदिक काल से सूर्य, उपास्य देव होते आये हैं, आब्राह्मण चाण्डाल पर्यन्त सब ही आर्य इस समय भी शय्या से गात्रोत्थान कर, पूर्व मुंह हो सूर्यदेव को प्रणाम किया करते हैं; सूर्यदेव ही गायत्री के उपास्य देवता हैं। शालग्राम शिला आदि उपलक्ष्य कर जिस प्रकार ईश्वर की उपासना की व्यवस्था मानी जाती है, उसी प्रकार सूर्य को भी उपलक्ष्य कर ईश्वरोपासना की व्यवस्था की गई है। श्रीकृष्ण और अन्याय १० अवतार, सब ही विष्णु के अवतार कहे जाते हैं। श्रीकृष्ण नाम से कोई व्यक्ति अवतीर्ण हुए, जब यह स्वीकार कर लिया गया, और वे अवतार कहकर माने भी गये तब उन के जीवन के साथ विष्णु या सूर्य (कारण वेद में विष्णु और सूर्य एक) की लीला मिश्रित कर देना असम्भव नहीं है। श्रीकृष्ण की बाल्य—लीला के साथ जो सूर्य की लीला मिश्रित हुई है। इस के बहुत प्रमाण पाये जाते हैं। बाल्य—लीला यदि इस प्रकार रूपक के ऊपर न्यस्त न किया जाता, तो परम पवित्र गीता शास्त्र के प्रवर्त्तक के चरित्र में "परदाराभिमर्शन" दोष अवश्य ही लगता। परीक्षित राजा ने श्रीकृष्ण जी की बाल्य—लीला सुनकर शुकदेव जी से इस प्रकार प्रश्न किया था किः—"

"संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्यच ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥
स कथं धर्म्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वैजुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ! ॥"

जिस संशय ने राजा परीक्षित के मन को डमाडोल वा सन्दिग्ध कर दिया था वही संशय आज अनेक लोगों के मन में उठता है। स्वतः ही लोगों के मन में यह प्रश्न होता है कि धर्म्मसंस्थापनार्थ और अधर्म्म के नाश के लिये जिन का जन्म हुआ है वे परस्त्रीगमन रूप अकार्य वा कुत्सित कर्म में क्यों कर प्रवृत्त होंगे ? । या तो यह कोई आध्यात्मिक व्यापार है या किसी ज्योतिष शास्त्रोक्त विषय का रूपक है। राधा को ह्लादिनी शक्ति (अध्यात्म) मानना पड़ेगा या राधा को "राधा" नक्षत्र मानना पड़ेगा । नहीं तो अवतार की मर्य्यादा की रक्षा नहीं होती । शुकदेव जी के मुख से जो राजा परीक्षित के प्रश्न का उत्तर दिया गया है उसे कोई भी सन्तोष-जनक (उत्तर) नहीं मान सकता ।

"ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत्" ॥

यह बात सुनने से किसी के मन की शङ्का नहीं जाती तो परीक्षित का भी सन्देह दूर हुआ हो या नहीं इस में सन्देह ही है । "मैं हजारों दुष्कर्म करूंगा, उस पर कोई ख्याल न करना मैं जो कहूंगा वही करना,, । ऐसी बात किसी धर्म्म प्रवर्त्तक व्यक्ति के में शोभा नहीं देती । अवतार का प्रयोजन क्या ? इस पर अवतारवादी लोग कहते हैं कि मनुष्यों को शिक्षा मिलना ही अवतार का प्रयोजन है । जिस कार्य्य से मनुष्यों को सुशिक्षा न हो कर कुशिक्षा होती ऐसे कार्य्यों को अवतार में आरोपन करना नितान्त असङ्गत है । चाहे जिस भाव से ही देखा जावे श्रीकृष्ण जी की बाल्यलीला को ऐतिहासिक घटना कह कर मानना बहुत कठिन है । बाल्य लीला में नानाप्रकार का आध्यात्मिक वर्णन भी है । हम ने जो वेदाङ्ग—ज्योतिष के अनुसार रूपकवर्णन

किया है। इससे हमारा प्रयोजन यह है कि मनुष्य को सब विषयों में सत्य का अनुसन्धान करना चाहिये। यदि हमारे इस रूपक वर्णन में कोई भ्रान्ति सिद्ध हो तो उसे हम सादर स्वीकार करेंगे। श्रीकृष्ण वा श्रीरामचन्द्र आदि महापुरुषों के किसी २ चरित में कोई २ अंश रूपकालङ्कार से वर्णन किये गये हैं ऐसा कहने से उन महात्माओं की सत्ता नष्ट नहीं होती अर्थात् ऐसा कोई न समझे कि इन महात्माओं ने जन्म ही नहीं ग्रहण किया केवल रूपक मात्र है। और उस में उन २ अवतारों के उपासकों के क्षोभ का कोई कारण नहीं। सर्वजन आराध्य आदिक के चरित में जो कई एक अर्थविहीन उपन्यास या कलङ्क आरोप किया जाया करता, वह निर्दोष, सार्थक, रूपक मात्र, और उस में अवतार आदि के चरित्र में कलङ्क स्पर्श न हो यही हमारे इस रूपकवर्णन का उद्देश्य है। अब हम आगे श्रीकृष्णलीला-का वर्णन करेंगे।

श्रीकृष्ण-लीला।

श्रीकृष्ण जी महाराज श्रीविष्णु भगवान् के अवतार कहे जाते हैं। वसुदेव और देवकी श्रीकृष्ण जी के पिता, माता, श्रीराधिका श्रीकृष्ण जी की प्रधाना शक्ति,-वृन्दावन, मथुरा, द्वारका और कुरुक्षेत्र, श्रीकृष्ण के लीलास्थल कहे जाते हैं असुरविनाश के लिये श्रीकृष्णजी का पृथिवी पर अवतार का उद्देश्य माना जाता है। श्री मद्भागवत पु० विष्णु पु० और ब्रह्म वैवर्त्त पुराणों में श्रीकृष्ण लीला वर्णित है।

वैदिक आर्य्यों का परमदेव (१) सूर्य्य देव और वेदोक्त प्रमाण से सूर्य का दूसरा नाम विष्णु (२) है और विष्णु सूर्य्य का अधिष्ठात्री देवता (३) है। प्राचीन आर्य्यलोग प्रकृत वेदोक्त देव भिन्नअन्य देवोपासक थे ऐसा कदापि सम्भव नहीं।

गोलकस्थ राशिचक्र में सूर्य्य देव का एक वर्ष परिभ्रमण, व्यापार उपलक्ष करके आर्य्य जाति के मनोरञ्जन के लिये पूर्व समय में श्रीकृष्ण लीला का अङ्कुर आरोपित हुआ किन्तु क्रमशः पुराणों में इस लीला रूपी वृक्ष की शाखा प्रशाखा, पल्लव, होकर अब इस (लीलारूपी) वृक्ष में विषमय फल हो गये। (कुदरती प्राकृत राशि लीला का मर्म भूल कर श्रीकृष्ण महाराज जैसे आदर्श पुरुष वा पुरुषोत्तम के चरित्र में कलङ्क लगा) नहीं तो अधःपतन शील भारत भूमि में कुरुचि की धारा बहती हुई आदर्श पुरुष श्री कृष्ण जी को अतल स्पर्श कलङ्करूपी समुद्र में निमज्जित हो, उछलना डूबना क्यों पड़ता !!!

(१)-गायत्र्युक्त सविता देव। (२)-ऋ० ८।७७।१० ऋग् १।२२।१६॥ (३)-गायत्री॥

तत्काल की विचित्र महिमा है! अनन्तकाल, अनादि-देव को ग्रास करने के लिये उद्यत है। अनादि, देव आज भारत में कलुषित भाव से पूजित होते हैं। अनुराग न होने से शीघ्र पूजा लोप होगी। भारत के विप्र कुल सदाशय साधुचित्त यह रूपक कल्पना करके भी आज सनातन आर्यसमाज के निकट दायी हैं। इस जातीय ऋण विमोचनार्थ आज हम श्रीकृष्ण लीला के रहस्य भेद करने में कृत संकल्प हुए हैं।

फाल्गुन की अमावास्या को सायङ्काल में एक बार गोलक (आकाश की ओर) सन्दर्शन करो। तब देखोगे कि आज भी श्रीकृष्ण लीला गोलक में अनश्वर अक्षरों में अङ्कित हो रही है। तुम लोग अपने मस्तक की ओर (आकाश में) तारक मय धनुषाकृति [illegible] देखोगे, उस का नाम "पुनर्वसु" है। इस वसु नक्षत्र या [illegible] की गोद में * यह देवकी विराजमान है। इस वसु नक्षत्र के तृतीय पदान्त में जो विन्दु देखते हो उस विन्दु का नाम 'कर्कट क्रान्ति' है। यह विन्दु [illegible] पर अवस्थित है। इस विन्दु के स्पर्श करने पर सूर्यदेव [illegible] होते हैं। और इस पर नये वर्ष के "[illegible]" का उदय (जन्म) होता है। यह विन्दु बाल (नये साल का सूर्य) बाल कृष्ण के जन्म (उदय) स्थान है। कल्पना नहीं समझो नव दूर्वादलश्याम (१) तुम्हारे सामने [illegible] हो रहा है। श्रीकृष्ण रेखा में शिशुमण्डल छाया तल (२) [illegible] में [illegible]—है सम्मुख में कर्कट सिंह कन्या तुला वृश्चिक और धनु राशि। [illegible] प्रमुख (३) अतिक्रमण कर प्रथमतः अग्रसर हुए। सम्मुख में कर्कट राशिस्थ तीन तारात्मक बाण के आकार का पुष्य नक्षत्र पर [illegible] विराजमान हैं। श्रीकृष्ण पुष्य संक्रमण के पीछे कर्कट राशिस्थ हुए सर्प कालिय (४) कालीय सर्प का मस्तक षट्तारकमय चक्राकृति और इसको आश्लेषा नक्षत्र कहते हैं। इस की अधिष्ठात्री देवता 'फणी' हैं।

श्रीकृष्ण ने आश्लेषा में पैर रखकर कालीय सर्प को दमन किया। सम्मुख

---

* पुनर्वसु नक्षत्र का अधिष्ठात्री देवता देवमाता अदिति है [illegible] कश्यपो वसुदेवश्च [illegible] श्रीकृष्ण जन्मखण्डे। "आदितिर्देवकी [illegible]" इति हरिवंशे। रेवती नक्षत्र से [illegible] नक्षत्र पर्यन्त [illegible] का नाम अदिति या देवकी [illegible]।

(१) Castor star अर्थात् विष्णु नामक पुनर्वसु नक्षत्र के छः तारक में से सबसे उज्ज्वली तारा जैसे—"धाता [illegible] सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनलः प्रत्युषश्च प्रभासश्च॥ वसवोऽष्टौ क्रमात् स्मृताः" इति भरतः (२) Lynx Constellation or Canis minor (३ गतिक्रम, १० । १७ । १८) (४) Hydra Constillation

में सिंह राशिस्थ पञ्च तारकामय मघा नक्षत्र है और इस की अधिष्ठात्री देवता 'यम' हैं सुतरां मघा की ज्योतिः नव प्रसूत बालक का जीवन संहारक "ग्रहि" पूतना नामक बाल रोग का उत्पादक यही मघा (१) पूतना है। मघा की योगतारा (२) देवकी के (अयन रेखार्द्ध) उपरिस्थ कहने से पूतना को मातृ पद में अभिषिक्त कर श्रीकृष्ण को स्तन्य देने में व्यापृत कियी गयी है। सूर्य्य देव के मघा में अवस्थिति काल में मघा आच्छादित होता है। श्रीकृष्ण ने मघा संहार कर पूतना को विनाश किया। सामने सिंहराशिस्थ पूर्व एवं उत्तर दोनों फल्गुनी वा अर्जुनी नक्षत्र (३) इन दो नक्षत्रों को अतिक्रम कर श्रीकृष्ण ने "यमलार्जुन वृक्ष" भञ्जन लीला दिखलाया है। सम्मुख में कन्या राशिस्थ हस्ता चित्रा, तुला राशिस्थ स्वाती, विशाखा, वृश्चिक राशिस्थ अनुराधा, ज्येष्ठा, और धनु राशिस्थ मूल, पूर्वाषाढ़, और उत्तराषाढ़ ये नव नक्षत्र हैं। ये ही आधुनिक पौराणिक नव ९ नारी हैं (४) आठ सखी और आद्यशक्ति विशाखा या राधा (५) विशाखा की आकृति पुष्पमाला या तोरण की नाईं या हिमल कीसी है। और विशाखा की अधिष्ठात्री देवता 'शक्राग्नी, या 'विद्युत' है। इस विद्युताग्नि का नाम यही 'र' (६) अग्नि का आधार कह कर विशाखा 'राधा' नाम से विख्यात (७) है। श्रीकृष्ण, चन्द्रावलि, चित्रलेखा। ललिता (८) इन तीन सखियों के साथ सम्भाषण कर श्री राधा के घर में आकर देखा कि अयन रेखा को (९) श्रीराधा ने अधिकार किया है। श्रीकृष्ण और श्रीराधा का मिलन हुआ। यह श्री राधा कौन हैं? वृष राशिस्थ सूर्य्य देव "वृषभानु" राजा। 'कलावती, चन्द्रिमा उन की पत्नी हैं। कलावती अपने पति वृष (राशिस्थ सूर्य्य) भानु (राजा) से मिलने की आशा में उन्मत्ता होकर पूर्णाकृति लाभ के

---

(१) Regulus (२) मघा को पूतना कहने का और भी कारण है मघा की आकृति हल की सी है, और देखने में ध्वजा Flag की नाईं मालूम पड़ता है इस कारण मघा को "ध्वजिनी" कहना सार्थक है। और "ध्वजिनी वाहिनी सेना, पृतनाऽनीकिनी चमूः" इत्यमरः। इस अमरकोश प्रमाण से पाया जाता है कि पूतना शब्द 'ध्वजिनी के अर्थ में व्यवहार करने योग्य है और मघा पूतना दोनों ही 'ध्वजिनी, कहने से मघा पूतना और पूतना को श्रीकृष्ण जी के मातृस्थान में बिठलाने के अनेक कारण हैं। जैसे तृतीय दिवसे मासे (वर्षे वा गृह्णाति) "पूतना नाम मातृका" इति चक्रपाणिदत्त। श्रीकृष्ण जी को पूतना के स्तन्य देने का और भी कारण है जैसे भावप्रकाश (वैद्यक) में यह पूतना "बाल रोग चिकित्सायाम् तत्र संशोधने पूर्वं धात्र्याः स्तन्यां विशोधयेत्"॥

(३) ऋक् १० । ८५ । १३ ॥

(४) चन्द्रावलि, चित्रलेखा ललिता विशाखा तुङ्ग विद्या रङ्ग देवी चम्पकलता सुदेवी और इन्दु लेखा ये ९ हैं।

(५) "राधा विशाखा पुष्येतु" इत्यमरः (६) 'स्मृते रः, पावके तीक्ष्णे" इति मेदिनी (७) "वैशाखे माधवोराधः इत्यमरः (८) स्वाती नक्षत्र की अधिष्ठात्री देवता 'पवन, और स्वाती तुला राशि में अवस्थित होने से इस का नाम 'ललिता, है। और हस्ता की पार्श्व तारा चन्द्र तुल्य शुक्र वर्णा है (९) अयन घोष या रायण घोष॥

लिये ज्येष्ठा नक्षत्राभिमुख यात्रा काल में कमलाकृति विशाखा के बीच विद्युत रूप राधा को प्राप्त हुई। इस स्थान में राधा का पौराणिक जन्म और लालन पालन आदि पाठक स्मरण करें।

श्रीकृष्ण का, तुला राशि में राधा नक्षत्र भोगकाल में आकाशाग्नि (सूर्य) आन्तरिक्ष अग्नि में (बिजुली में) मिलन हुआ। (१) सांख्य शास्त्रोक्त प्रकृति पुरुष का मिलन हुआ। क्रमशः कार्त्तिकी पौर्णमासी आयी विद्युतमयी षट् कृत्तिका की शोभा में पौर्णमासी की रौप्यमय' ज्योत्स्ना. घर्षित हुयी। कार्त्तिकी पौर्णमासी की कौमुदी ज्योत्स्ना में जगत् भासित और हासित होने लगा। पशु, पक्षी आदि सब जीवगण और जगत् जन आह्लाद से पुलकित हुए। जगत् जन इस विमुग्ध कर रजनी को नृत्य,गीत, द्वारा सुख से व्यतीत करने लगे। यह विचित्र नहीं। इसी जगत् मय नृत्य.गीत. का नाम 'रास-लीला' (२) है। श्रीकृष्णदेव श्रीराधा और आठ सखी मिल कर रासलीला में स्थान वृन्दावन में प्रमत्त हुए। आज पौर्णमासी कलावती और मातृकागण (३) (षटकृत्तिका) अपनी कन्या राधा के शुभग्रह में उन्मत्ता हुयी। विमान पर पुरन्ध्रीगण. आज अट्टहास करती हैं। प्रकृति की इस अनुपम शोभा में संसार मुग्ध हो रहा है।

यह 'वृन्दावन' कहां? यह देखो 'गोलक' में लाखोंलाख गोप"। (४) गोपी अर्थात् तारक तारका परिवेष्टित हो धाता. इन्द्र, सविता इत्यादि द्वादश आदित्य (५) रूप में श्रीदामनु. सुदामन, प्रभृति' द्वादश गोप मण्डल के साथ श्रीसूर्यदेव, श्रीकृष्ण' नाम से वृन्दावन में रासलीला में विराजमान (६) हैं। यदि इस प्राकृतिक रासलीला सन्दर्शन से आप के हृदय में गम्भीर विमल ईश्वर के प्रेम का उदय हो कर मन, प्राण, पुलकित न हो और कलुषित भौतिक प्रेमभाव यदि किसी के क्षुद्र कुसंस्कार तिमिराच्छन्न हृदय में प्रवेश करता हो तब हम और क्या कहेंगे, हां इतना तो अवश्य कहेंगे कि भाइयो !. श्रीकृष्णभगवान् में चाहे ईश्वरभाव से अपनी रुचि.अनुसार पूजा करो परन्तु ऐसे पुरुषोत्तम आदर्श पुरुष के सच्चरित्र में पापमय लीला चित्रित आपे को कलङ्कित न करो और नारकी न बनो !!!

हमने पुनर्वसु नक्षत्र से राधा नक्षत्र तक आदित्यदेव' (श्रीकृष्ण) का

---

(१)—ऋक् १ । ९५ । ३० ॥ (२)—गुणेरागेद्रवे रसः । इत्यमरः । (३)—षट् कृत्तिका । (४)—गो—का अर्थ किरण ऋक् १ । ६२ । ५ प—पालने (५)—वैशाख से चैत्र पर्यन्त सूर्य के नाम १ धाता, २ इन्द्र, ३ सविता, ४ विवस्वान्, ५ भग, ६ अर्यमन्, ७ भास्कर, ८ मित्र, ९ विष्णु, १० वरुण, ११ पूषा और १२ ईश हैं। महाभारत आदि पर्व ॥(६) ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में के ४ थे अध्याय ।

अनुसरण कर रासलीला का बोध कराया परन्तु इस से लीला का सम्यक् बोध न हुआ है। क्योंकि बलदेव, नन्दगोप, यशोदा देवी और रोहिणी देवी इन के न होने से रासलीला का आरम्भ नहीं हो सकता। अन्य ग्रह की तरह आदित्य देव की क्रूरगति (१) नहीं होती, सुतरां नन्दराज के भवन में श्रीकृष्ण को ले कर जाने के लिये उपाय रहित (२) इस कारण इस समय बलदेव आदि को नन्दालय से रासलीला में निमन्त्रण कर, लाना पड़ा। बहुत पर्य्यटन से प्रयोजन नहीं।

यह देखो एकवार, राशिचक्र में दृष्टि डालकर देखो कलावती चन्द्रमा के पश्चात् भाग में वृषवीथि में। (३) वृषराशि में यशोदादेवी (४) और रोहिणी देवी (Aldebaran in Hyades) विराजती हैं। वृषराशिस्थ सूर्य इन्द्र देव (५) देवराज सखा नन्दराज कहां? "यानस्यमित्र नहि तस्य दूरम्" सुतरां हम ने आपतत नन्दराज को वृषराशि में स्थापन किया। विचार पीछे होगा।

यथा स्थान में विष्णुपुराण के ५म अंश में बलदेव जी का जन्मवृत्तान्त वर्णित नहीं है। यथा स्थान में श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में ऋषिवाक्य में बलदेव जी का जन्मवृत्तान्त का विवरण प्रकाशित नहीं। यथा स्थान में ब्रह्मवैवर्त्त पु० के जन्मखण्ड में संघर्षण देव (६) का जन्मवृत्तान्त विवृत्त है। किन्तु एकवार इसी के साथ बुध-जन्म वृत्तान्त स्मरण करो (७) चतुर्थ वसुदेव पुत्र संघर्षण रोहिणी गर्भजात कह कर 'रौहिणेय हैं' किन्तु 'देवकी-नन्दन' या 'वसुदेवनन्दन' नाम क्यों नहीं पाया? तृतीय वसुदेव (८) पुत्र बुध ने सौम्य' नाम पाया किन्तु 'तारकानन्दन' या तारासुत' नाम क्यों नहीं पाया? दोनों ही का जन्म वृत्तान्त रूपक मूलक है। हम लोग ज्योतिष-शास्त्र में बुध की आधिष्क्रिया घटना में पाते हैं कि, बुध "रौहिणेय है।"। पुराण में रूपक बिगड़ने के भय से इस का इतिहास नहीं लिखा गया कि किस कारण से बुध का 'रौहिणेय' नाम पड़ा।

---

(१)--Rotrograde motion (२)--राशि चक्र में आदित्य देव मेष राशि से क्रमशः पूर्वदिशा में वृष आदि दुआदश राशि एक वर्ष मे परिभ्रमण करते हैं। वृष राशि मे नन्दालय मिथुन राशिस्थ पुनर्वसु नक्षत्र के पश्चिम मे वृष राशि अवस्थित सुतरां राशि चक्र पर्यटन न करने से श्रीकृष्ण वृष राशि में किस प्रकार जायगे॥ (३)—वृष राशि के पूर्व और पश्चिम सीमान्त में स्थित दो ध्रुवक रेखा के मध्यवर्त्ती गोलकान्श को वृषवीथि कहते हैं। (४)--वृष राशिस्थ पाटलवर्ण देवमातृका षोडश मातृका मे देव सेना या षष्ठी नाम से ख्यात एवं ताम् वदन्ति महा षष्ठी पण्डिताः शिशुपालिकाम्। देवमातृका ने श्रीकृष्णलीला में यशोदा नाम पाया है ज्योतिषमतां कहने से यशस्वि धवलता॥ (५)--ज्येष्ठमूले गवेदिन्द्रः इतिकौर्मे १८ अध्यायः॥

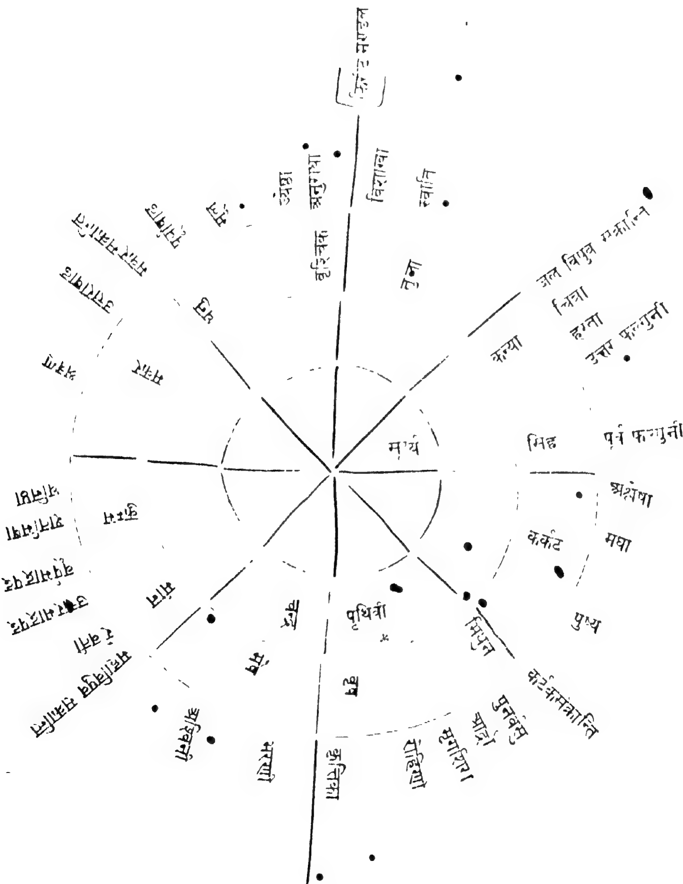
(६)--देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां दधौ भिया। रोहिण्या जठरे माया तमा कृष्य ररक्ष च॥

तस्माद् बभूव भगवान् नाम्ना संघर्षणः प्रभुः।

(७)--तारका गर्भ सम्भूत स एव च बुधः स्वयम्। ब्रह्मवै०पु०प्र०खण्डे६१अ०॥ (८)--धरो ध्रुवश्च सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्युषश्च प्रभातश्च वसवोऽष्टौ क्रमात् स्मृताः॥ गदा वरद खड्गिण इति ग्रह--योग तत्त्वे।

इस समय देखा जाता है जो, बलदेव का नाम रौहिणेय है। और बुध का भी नाम रौहिणेय है। गदाधारी (१) यह रौहिणेय श्रीकृष्ण के चिरसङ्गी हैं। गदाधारी अन्य रौहिणेय आदित्यदेव के चिरसङ्गी हैं। गदाधारी अन्य रौहिणेय आदित्यदेव के चिर सङ्गी हैं (२)। आदित्यदेव श्रीकृष्ण हुए, बलदेव को न्यायानुसार बुध ग्रह कहा जावे। घर का घर ही में मिला "गृहंचेत्मधुविन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्" इस समय हम रासलीला वर्णन में प्रवृत्त हुए।

रास–पूर्णिमा ॥



(१)-मूषली मूषला युधान्। (२)-बुध ग्रह सूर्य के ३० अंश के बीच में रहता है अतएव यह प्रायः सूर्य किरण मे छिपा रहता है।

और एक बार राशि-चक्र पर दृष्टि डालो तो देखोगे कि १२ राशिस्थ (१) २७ नक्षत्रों में केवल पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, स्वाती, विशाख के उत्तरस्थ एक तारका और श्रवण, धनिष्ठा ये ही छः नक्षत्र अयनमण्डल के ऊपर,

राशि	नक्षत्र	तारा-संख्या	आकृति	अधिष्ठात्री देवता	अङ्गरेजी
	अश्विनी	३	घोटकमुख	अश्वि	Aries
मेष	भरणी	३	त्रिकोण	यम	Musca
	कृत्तिका	६	अग्निशिखा	दहन	Pleiades
वृष	रोहिणी	५	शकट	कमलज	Hyades
	मृगशिरा	३	बिडाल पद	शशि	O
मिथुन	आर्द्रा	१	पद्म	शूलभृत	Betelgeuose
	पुनर्वसु	५	धनु	आदिति	Castor etc
कर्कट	पुष्य	३	बाण	जीव	Asellus
	अश्लेषा	६	चक्र	फणि	Hydra
	मघा	५	लाङ्गल	पितृगण या यम	Regulus
सिंह	पूर्वफाल्गुनी	२	खट्ग	योनि	Zosma & Subra
	उत्तरफाल्गुनी	२	खट्ग	अर्यमा	Denebola & another
कन्या	हस्ता	५	हस्त	दिनकृत्	Curvus
	चित्रा	१	मुक्ता	त्वष्टृ	Spica.
तुला	स्वाती	१	कुमकुमवर्ण	पवन	Arcturus.
	विशाखा	४	तोरण	शक्राग्नि	Akrob, Dschubba. and others.
वृश्चिक	अनुराधा	७	सर्प	मित्र	Antares etc.
	ज्येष्ठा	३	शूकरदन्त या कुण्डल	शक्र	O
	मूल	६	शङ्ख	निर्ऋति	Lesath etc.
धनु	पूर्वाषाढ	४	शय्या	तोय	Kaus
	उत्तराषाढ(तुयक्त)	४	सूर्प	विश्वविरिञ्चि	O
मकर	श्रवणा	३	शर	हरि	Aquila
	धनिष्ठा	५	मर्द्दल	वसु	Delphinus
कुम्भ	शतभिषा	१००	मण्डल	वरुण	O
	पूर्वभाद्रपद	२	खड्ग	अजएकपाते	Enif & Homan.
मीन	उत्तरभाद्रपद	४	पर्यङ्क	अहिर्बुध्न	Square of Pegasus
	रेवती	३२	मत्स्य	पूषा	Piscis.
(तुयक्त)	अभिजित्	३	शृङ्गाटक	विरिञ्चि	Vega Etc.

गोलक के कदम्ब के (१) निकटतर है। कुरुक्षेत्रपर्व में हम प्रथम दो का ही परिचय देंगे। द्वितीय दो कृष्णलीला की ललिता और श्रीराधा, तृतीय दो का परिचय अङ्क में होगा। यह देखो ! श्रीराधा का किरीट, राशिचक्र के एक धनु के (२) शिरोभाग में उच्चासन पर बैठा है। वाम भाग में ललिता सखी, अन्यान्य सखियों में चन्द्रावली (हस्ता) (३) राशिचक्र के दक्षिण में, चित्र लेखा (चित्रा नक्षत्र) राशिचक्र के मध्य में। ललिता (स्वाती) और श्रीराधा की (विशाखा का) (४) अवस्थिति स्थान ऊपर कहा गया है। रङ्गदेवी राशिचक्र के मध्यमें अवस्थित है। सुदेवी (५) चम्पक लता (६) राशिचक्र के दक्षिण में अवस्थित तुङ्गदेवी हैं तुङ्ग में और इन्द्रलेखा (७)–राशि चक्र में अवस्थित हैं। अयन मण्डल के ऊपर धनु राशि के शिरो भाग में वृष राशि में, यशोदा देवी (देवमातृका कृत्तिका) (८) और बलदेव की माता रोहिणी देवी के वामभाग में कलावती कौमुदी चन्द्रिमा के अवस्थित का स्थान है।

यह देखो ! कलावती आश्विनी पूर्णिमा, अश्विनी नक्षत्र में अवस्थित कर रास-दर्शन के उल्लास में द्रुत वेग से राशि चक्र में दौड़ रही हैं। श्रीकृष्ण और श्रीराधा में परस्पर रासलीला निमित्त विचार हो रहा है। कलावती अश्विनी से भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आदि एक २ नक्षत्र अतिक्रम कर रही हैं और क्रम से जामाता के निकटस्थ होती जाती हैं, मानो नील अवगुण्ठन मुखकमल आच्छादन करती हैं (१०) पुनर्वसु नक्षत्रमें (११) विष्णु तारक के दर्शन से कलावती (१२) ने ८ कलाओं को आच्छादित कर लिया है (१३) एवं क्रमशः श्रीराधा नक्षत्र में आकर जामाता के दर्शन में १६ कला आ-

(१)–ध्रुव और अभिजित् नक्षत्र के प्रायः मध्यवर्त्ती विन्दु ध्रुव से १६ अंश दूर पर कदम्ब अवस्थित है। ध्रुवात् जिन लवान्तरे इति भास्कराचार्यः (२)--Amphi theatre. (३)--हस्ता के ५ नक्षत्र चन्द्रवत् शुक्ल वर्ण हैं ॥ (४)–विशाखा के तीन पद तुलाराशि मे और एक पद वृश्चिक राशि में और उत्तरस्थ तारका अयनमण्डल के उत्तर में एवं अन्य तीन दक्षिण में, इसकारण दुवचन का व्यवहार है। रामायण लङ्काकाण्ड। विशाखा के किरीट में १० नक्षत्र हैं॥ (५)-अनुराधा का दुतीय तारा नरक लोहित वर्ण कह कर अनुराधा का रङ्ग देवी नाम है—न--रक अर्थ से--न–सूर्य ॥ रकः स्फटिक सूर्ययो: । इत्यमरः। (६)--ज्येष्ठा वक्राकृति कहकर सुदेवी नाम मूला लता कृतिहै ॥ (७)--Line of beauty. (८)–तुङ्गस्थ कहने से पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र तुङ्ग देवी ने नाम पाया है॥ (९)--सूर्पाकार शुक्ल वर्ण चतुष् तारकामय उत्तराषाढ़ इन्दु लेखा है॥

(१०)—चतुर्थ मातृमण्डलम् – काशी खण्डे (११) – कृष्णपक्ष का कलाक्षय (१२) – पुनर्वसु शब्द से वसु का $\frac{३}{४}$ अंश। वसु = ८। सुतराम् ८ × $\frac{३}{४}$ = ६। अर्थात् पुनर्वसु नक्षत्रमें ६ तारे हैं। वर्त्तमान आर्य ज्योतिषशास्त्र में ५ गृहीत होते हैं। किन्तु ४ तारक को साधारण रख बाकी २ तारकों में से एक २ लेकर दो धनुष दीखेंगे वसु अर्थ से धनुष का ग्रहण है॥ (१३) – कार्तिकी कृष्णाष्टमी या गोपाष्टमी ॥

च्छादन किये (१) और अनुराधा में उपनीत हो कलावती अवगुण्ठन विमोचनार्थ उद्योग करने पर देखती हैं कि श्रवणावस्थित त्रिविक्रम सम्मुख में श्वसुर के दर्शन से बड़े पुलकित हैं। कलावती अर्द्धावगुण्ठित भाव से श्रवणा अतिक्रम कर धनिष्ठा आदि एक २ नक्षत्र को अतिक्रम करती २ मुख कमल के नील अवगुण्ठन क्रम से मोचन करते २ चलने (२) लगीं। अन्त में वृषराशि में उपनीत हो कृत्तिका और रोहिणी के वामभाग में आकर आश्वस्थ भाव से आनन्द में नील अवगुण्ठन एक मात्र विमोचन कर सादर ऊंचे आसन पर बैठ गयीं। यों कार्त्तिकी पूर्णिमा की कौमुदी पौर्णमासी का उदय हो कर ज्योत्स्ना में जगत् आलोकमय हुआ। कौमुदी की ज्योत्स्ना—अञ्चल में आवृत्त हो कर यशोदा देवी (कृत्तिका) छिपकर नीलमणि की रासलीला देखने लगीं। और बलदेव की माता भी अर्द्धाव-गुण्ठित मुख से रासलीला देखने लगीं। किन्तु पौर्णमासी कलावती श्वश्रूजन सुलभ अर्द्धगुण्ठित भाव अवलम्बन में सम्पूर्ण जगत् के सामने पृथिवी के पृष्ठदेश से वासर (दिवस) घर में रासलीला देखने की कामना से किनारे हो कर लुकझुक करती हैं। पुनर्वार जगत् की ओर चाह कर श्रीराधा की सम्पद् में गर्वित हो ठट्ठा कर हंसती हैं। उषा काल में कौमुदी चन्द्रमा वांके नजर से उभय पार्श्वस्थ वैवाहिक द्वय (३) की ओर दृष्टिपात कर अस्फुट स्वर से कहती हैं कि देखो देखो बहिन! हमारी राधा आज स्वामी समागम से सखीकुलमध्ये (तारानिचय) कहां छिप गयीं? कभी तो कार्त्तिक की चन्द्रिमा के आह्लाद से नाचती २ उन्मत्ता प्रायः हो कर पश्चात् उन्हीं वैवाहिक सच्चिदानन्द गोप को कहते हैं कि वाह! आज हमारा का शुभ दिन है! आ—नन्दपुत्र आनन्दमय श्रीकृष्णकी कृपा से हमारी राधा पवित्रा हुयीं। नन्दराज आह्लादसे गदगदभाव में कहते हैं कि श्रीमती अहह! तुम्हारी सुता राधा ही आद्या (४) शक्ति हैं। यह देखो! श्रीकृष्ण का रश्मि चूड़ा (उर्द्ध मुख मयूख को) तुम्हारे राधा के पदतल को मार्जन और धौत करता है।

यह देखो! कौमुदी चन्द्रमा के ऊर्द्ध्व भाग में प्रजापति ब्रह्मा 'औरिक' मण्डल (५) विराजमान है। आज प्रजापति ब्रह्मा पूर्ण चन्द्ररूपी हंस पर

(१)—अमावास्या॥ (२)—शुक्लपक्ष की कलावृद्धि॥ (३)—यशोदा और रोहिणी। (४)—कार्त्तिकी वर्ष विशाखासे गणित करने पर और शक्राग्नि या विद्युत्—मूर्त्ति अग्नि का आदि विकाश है॥

(५) Auriga constellation प्रजापति ब्रह्मा के शिरोदेश में प्रजापति नक्षत्र Delta auriga हृत् पद्म में ब्रह्महृत् (Star capella) तारा दक्षिण कुक्षि में अग्नितारक (Star nath) ब्रह्म-हृत् तारक के पूर्व दक्षिण अंश मे त्रिभुजाकार छोटे २ तीन तारे (The kids) कृपा त्रिवेद चिन्ह (Emblem)

सानन्द आसीन हैं। रासलीला देखने के आनन्द में ३३ कोटि देवता के साथ विद्याधर, अप्सरागण, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्धचारण, दैत्य, दानव, असुर, आदि परिवृत्त होकर रासमण्डल के ऊर्द्ध देश (१) में आसीन हैं। इसी उपलक्ष्य से श्रीराधा 'व्रजेश्वरी', 'रासेश्वरी', नाम से पुराणों में कही गयी हैं। और महर्षि वाल्मीकि ने विशाखा को सूर्यवंश का कुल नक्षत्र कह कर वर्णन किया है। और बङ्गाल के कवियों ने "रायी राजा," "रायी किशोरी" नाम से श्रीराधा का नाम कीर्तन किया है और इसी से पाश्चात्य ज्योतिषी लोगों ने श्रीराधा नक्षत्र को राजमुकुट नाम लिखा (Corona) (२) है। आज राशिचक्र के केन्द्र स्थान में श्रीकृष्ण (सूर्यदेव) और उन के दक्षिण भाग में बलदेव (वृषभ) अवस्थित हैं। और राशिचक्र में गोपीगण (तारकागण) श्रीराधा और ८ सखियों के साथ मिश्राकार में चक्र नृत्य में नाच कर कृष्ण बलराम की प्रदक्षिणा करती हैं। चन्द्रदेव ने भी सम्मिलित हो चक्र नृत्य में साथ दिया। रासेश्वर वासुदेव चक्र व्यूह की गति परीक्षा करते हैं। कार्त्तिकी चन्द्रिमा ज्योत्स्ना बाहु-विस्तार पूर्वक स्नान, [illegible], आनन्द आलिङ्गन कर स्नेह में डूब रही हैं। कार्त्तिकी पौर्णमासी के रौप्यमय ज्योत्स्ना सागर में तीनों जगत् वह चले। आनन्द मय सुधांशु सागर में जीव मात्र के हृदय निमग्न और अभिषिक्त हुए। अकथनीय विमल ज्योत्स्ना जल में विश्व ने अवगाहन किया। बाहुली (कार्त्तिकी) ज्योत्स्ना ने भुजलता को विस्तार कर ब्रह्मर्षि देवर्षि और राजर्षिगण को आलिङ्गन कर विमुग्ध किया। इस मोह में विमुग्ध होकर हमारे ऋषियों ने स्वयं भूतमय सर्वव्यापी परम पुरुष को सूक्ष्मभाव से ज्ञानकृत रूप से सवितृमण्डल मध्यवर्त्ती नारायण का ही वर्णन किया है। और सवितृमण्डल ही इस प्राकृतिक शोभा की (३) मूल कारण है कहने से सवितृमण्डल को ही विष्णुभाव से पूजा किया करते थे। और श्रीकृष्ण लीला की रूपक रचना किया हैं। अदितिनन्दन आदित्य देव में और देवकी नन्दन श्रीकृष्ण में भेद कहां? क्या ऋषियों ने सतर्क नहीं कर दिया है कि "अदितिर्देवकीत्यभूत् (हरिवंशे) (आदिति) और "देवमाता च देवकी" (ब्रह्मवैवर्त्त जन्मखण्डे) क्या ऋषियों ने इङ्गित नहीं कर दिया है कि आदित्यदेव ही देवकीनन्दन हैं?

---

(१) – गोलक में ५००० वर्ष पहिले यह दृश्य था इस समय अब उतना सुदृश्य नहीं रहा ॥ (२) – श्रीराधा के शिर पर किरीटमण्डल (Corona)

(३) सूर्य-किरण चन्द्रमण्डल में प्रतिफलित होने से ज्योत्स्ना की उत्पत्ति होती है।

" ततोऽखिल जगत्पद्मबोधायाच्युत भानुना ॥
देवकी पूर्व्व सन्ध्याया माविर्भूतं महात्मना " विष्णुपुराणे ५ अ० ३ अ०

इतना भ्रान्त क्यों ? क्या वेदाङ्ग भूत ज्योतिषशास्त्र यह नहीं कहता है कि यशोदा (कृत्तिका) का) की अधिष्ठात्री देवता दहन (अग्नि) और रोहिणी का कमलज (ब्रह्मा); अग्नि एवं ब्रह्मा एक ही हैं। इन ब्रह्मा के नाभि पद्म में (राशि चक्र के केन्द्र में) विष्णु या आदित्य देव अवस्थित हैं। यह देखो रोहिणी के शिरोभाग में प्रजापति ब्रह्मा हैं। यह ब्रह्मा ही नन्दराज हैं।

रासलीला—वस्त्रहरण ॥

राशि चक्र से परिचय रहने पर रासलीला समझ में आसकता है किन्तु " वस्त्रहरण " (लीला) समझने के लिये " गोलक " ज्ञान प्रयोजनीय है। पृथिवीस्थ ज्योतिषी गण ने पृथिवी के मेरु दण्ड (axis) उत्तर में प्रसारित कर गोलक में जो विन्दु प्राप्त होते हैं उस का नाम 'ध्रुवविन्दुरेखा' रक्खा है और पृथिवी से दृश्य गोलक, वि-षु-पत् मण्डल द्वारा द्विधा किया है।

राशि चक्र के केन्द्रस्थ ज्योतिर्विद् (?) राशि चक्र के मेरु दण्ड को (axis) उत्तर में प्रसारित कर गोलक में जो विन्दु प्राप्त होता उस का नाम कदम्ब रक्खा है। और इस केन्द्र से दृश्य गोलक अयनमण्डल द्वारा द्विधा किया है। मान लो कि 'कदम्ब' पर सूर्य को रखने से अयनमण्डल के दक्षिण भगस्थ दृश्यगोलकार्द्ध अन्धकारमय होगा।

इस समय वस्त्रहरण देखो ! असीम गोलक के बीच आदित्य देव अवस्थित हैं। आदित्य देव का केन्द्र (centre) और गोलक का केन्द्र एक ही है ऐसा कहने में दोष नहीं। आदित्यमण्डल को वेष्टन कर राशि चक्र अवस्थित है; इस समय राशि चक्र का नाम 'सुदर्शनचक्र' है। इससे नाम की भी सार्थकता होती है। यह देखो! सवितृ मण्डल के बीच नारायण श्रीकृष्ण इस केन्द्र में अवस्थिति कर समग्र राशि चक्र को कुलाल-चक्र की नाई घुमाते हैं। श्रीकृष्ण इस कुलाल चक्र का शक्तिमय सेधि काष्ठ हैं। सूर्यमण्डल--कुलाल चक्र को हडुकाष्ठ और राशि चक्र कुलाल चक्र का वेष्टन काष्ठ (वेलन काठ) है। यही कुलाल चक्र रासलीला का आदर्श (१) है।

गोपीगण (२७ नक्षत्र मय) राशिचक्र में अवस्थित रहकर सूर्य किरणरूपी वस्त्र में आवृत्त हो जगत् के चक्षु पर रह कर लोकों के अदृश्यभाव में

(१) कुलालचक्र प्रतिम मण्डल पङ्क्त्याङ्कितम्। इति उत्कलकलिका ॥

नृत्य-गीत में प्रमत्त हैं। कुलाल चक्र की नाईं ससूर्य राशिचक्र घूमता है। किन्तु सूर्य केन्द्र को त्याग नहीं करते हट्टुकाष्ठ की भांति केवल घूमते हैं। गोपीगण चक्र नृत्य में आदित्यदेव श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा करती हैं। क्या सुदृश्य मनोहर व्यापार है! विराट पुरुष का विराट व्यापार!

विराट पुरुष के नाभि स्थल में सूर्य हैं। किन्तु, आदित्य देव पर्यन्त काल के वशवर्त्ती हैं। तृतीय दिन आदित्य देव को श्रीराधा नक्षत्र त्याग कर अनुराधा नक्षत्र में पदार्पण करना पड़ेगा। किस का साध्य है कि इस नियम को तोड़ सके? इधर गोपीगण रास में उन्मत्ता हैं। अनुरोध तो सुनेंगी नहीं; रास में बाधा डालेंगी नहीं। उधर श्रीकृष्ण ने अपना माया-जाल विस्तार किया। विराट के नाभि देशस्थित सूर्य कदम्ब पर स्थापित हुए और अयन मण्डल के दक्षिणस्थ गोलकार्द्ध निशामय हुआ। गोपी का-किरण वस्त्र अपहृत (छीनागया) हुआ? जगउज्जल, चन्द्रावली, चन्द्रलेखा, तुङ्गदेवी- चम्पकलता, सुदेवी, और इन्दुलेखा प्रभृति तारा-सखियों को देख पाया। लज्जा से सखीगण नील समुद्र (१) में निमज्जित हुयीं किन्तु पण्ड-प्रयास। रूप छिपा नहीं !!!

इस रूपक में सूर्य श्रीकृष्ण कदम्ब कदम्बवृक्ष, तारागण गोपी, सूर्यकिरण वस्त्र, नील अन्तरिक्ष, कालिन्दी-जल, महर्षिगणरचित इस सुधामय रूपक वृक्ष ने जो विषमय फल धारण किया है, इस को देख कर महर्षिगण आत्म-ग्लानि से दग्ध प्रायः हो गये। रासलीला भङ्ग हुयी। श्रीकृष्ण व्रज (अयन-मण्डल) में चले। सम्मुख में अनुराधा नक्षत्र है। भ्रान्त आर्यकुल! जो ज्योतिष-शास्त्र तुम्हारे शयन में, स्वप्न में, उत्सव में, व्यसन में, शोक में, सुख में, समाज में, विजन में, पाप में, पुण्य में, सहाय होता था; आज तुम लोग उसी ज्योतिषशास्त्र को भूल कर श्रीराधाकृष्ण के "अश्लील, रासलीला के अस्तित्व में विश्वास करते हो !!! कहाँ श्रीकृष्ण! कहां राधा! पृथिवी से करोड़ों योजन से अधिक दूरी पर सूर्य, उस से लक्ष २ गुण योजन अन्तर पर राशिचक्र के नक्षत्र श्रीराधा आदि अवस्थित, दुर्दशामें पड़ने से इतना मोह पैदा होता है। आदि जात आदित्यदेव श्रीकृष्ण का राशिचक्र ही "सुदर्शनचक्र" है। चक्री के उस चक्र के किरण जाल में आच्छन्न हो आर्य्यजाति, पुरस्थित प्राकृतिक रासलीला को देखनेमें अक्षम होरहीहै। रूपक रक्षाके अनुरोध से, श्रीकृष्ण की रासलीला वर्णन में पुराणकार महर्षियों ने कौतुक च्छल से कुक्षण में कलि-

(१) अन्तरिक्ष का नाम है। ऋग्वेद १० । ६८ । ६ --- १२

पय दो २ अर्थवाले शब्दों का भी प्रयोग किया है । वेद और वेदाङ्ग ज्योतिष-शास्त्र के पाठ और ज्योतिषशास्त्र के अनुशीलन में और ज्योतिष्क मण्डल के पर्य्यवेक्षण (Observation) से भारतीय आर्यजाति विमुख हो, महर्षि-प्रणीत पुराणस्थ इन सब दो अर्थ वाले शब्दों के प्रकृत अर्थ ग्रहण में असमर्थ हो गयी, और महर्षिगण पूजित आदित्य देव में अधिष्ठित परम पुरुष प्रकृतदेव श्रीहरि को भूल कर आर्य्यजाति अन्धे की नाईं अपने गन्तव्य मार्ग को भूल कर इधर उधर भटकती फिरती है । क्या आश्चर्य है ! क्या आश्चर्य है ! क्या भयावह विभ्राट भारत में उपस्थित हुआ है ! षडङ्ग को छोड़ कर कौन पण्डित वेद का अर्थ कर सकता ? गोलकस्थ ग्रह-नक्षत्र की गति विधि छोड़ कर, कौन सुशिक्षित सुधीजन पुराण की व्याख्या कर सकते ? इस भ्रम प्रमाद में फसकर भारत माता के हृदय में अधिष्ठित गुण मणि श्रीकृष्ण में भक्ति स्थापन करने से पराङ्मुख होकर, भौतिक कृष्ण के पदाश्रय ले रहे हैं । कोई तो नवद्वीप में मानव-ईश्वर स्थापन में भक्ति वशतः ललायित हो रहे हैं । आर्यगण ! एकबार आलस्य छोड़ कर नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, ग्रहों की गति परीक्षा करो तो वेदोक्त श्रीकृष्ण (श्रीविष्णु) के चरित्र की निर्मलता हृदयङ्गम कर सकोगे । खेद-हारा हो कर आर्यजाति को निर्वाक् निरुत्तरभाव से अवनत मस्तक में, देश २ में, विदेश में, नगर नगर में, गांव २ में, गली २ में, मार्ग में, घाट २ पर, श्रीकृष्णकी कलङ्क रटना और व्यङ्गोक्ति नहीं सुननी पड़ेगी । इसी खेद से हम लोगों ने आज पुराण के रूपक जाल को फाड़ने में हाथ डाला है । नहीं तो ऐसी मनोरम अपूर्व मरीचिका के ध्वंस करने में किस की प्रवृत्ति हो सकती ? अब इस के आगे सिद्धान्त ज्योतिष तथा आर्यभटीय के विषय संक्षिप्त विचार किया जावेगा और अन्यान्य पुराणोक्त वा ब्राह्मणोक्त उपाख्यानों का वर्णन-सिद्धान्त शिरोमणि के अनुवाद की भूमिका में लिखा जावेगा ।



सिद्धान्तज्योतिषग्रन्थ ॥

भारतवासियो ! आप वेद और धर्मशास्त्र अध्ययन करते हैं, कोई वेद और धर्मशास्त्र अध्ययनार्थ तैयार हैं: परन्तु आप जानते हैं ! यह क्या लिखा है-

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति हस्म यद्ब्रह्म विदोवदन्ति पराचैवा पराच । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति" ॥ मुण्डक उ० १ । १ । ४, ५ ॥

अर्थात्-विद्या दो प्रकार की है, एक परा दूसरी अपरा । इन में ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त एवं ज्योतिष अपरा विद्या है । और जिस विद्या से अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो उसे परा विद्या कहते। इन में से शिक्षा आदि वेदरूपी पुरुष के छः अङ्ग स्वरूप हैं जैसा कि कहा है-

"शब्द शास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी, श्रोत्रमुक्तं निरुक्तञ्च कल्पः करौ । या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका, पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः" ॥१०॥

अर्थात्-वेदरूपी पुरुष के व्याकरण तो मुख, ज्योतिष नेत्र, शिक्षा नासिका, कल्प दोनों हाथ और छन्दः (शास्त्र) पैर हैं । क्या विना नेत्र के वेद पुरुष को अन्धे रक्खेंगे एवं आप भी नेत्र हीन हो वेद के ज्योतिष सम्बन्धि गूढ़ मर्म्म का ऊटपटाङ्ग अश्लील अर्थ कर आर्यों का प्राचीन गौरव नष्ट करेंगे ?

ज्योतिष शास्त्र कहने से-यह न समझ लीजिये कि केवल फलित के ग्रन्थों ही को ज्योतिष कहते किन्तु संहिता, जातक आदि और सिद्धान्त मिल कर ज्योतिष कहाता है। यह बात हम ही नहीं कहते किन्तु जगत् विख्यात पं० बापूदेव शास्त्री जी की वक्तृता हमारे सू०सि० की भूमिकामें पढ़ लीजिये । और महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी अपने " गणक तरङ्गिणी " नामक ग्रन्थ में जिस में सिद्धान्त ज्योतिषियों का इतिहास लिखा है। लिखते हैं कि-

" आधुनिका ज्योतिर्विदः फलमात्रैकवेदिनः "

व्याकरण शास्त्र मज्ञात्वैव लघुपाराशरीबालबोधशीघ्रबोधमुहूर्त्तचिन्तामणिनीलकण्ठीवृहज्जातकजैमिनिसूत्राणामेकदेशेन मत्ता आत्मानं कृत कृत्यं-ज्योतिषशास्त्रपारङ्गतमन्यन्ते । तत्र साहसिनो मकरन्दादिरचित सारण्यनुसारेण तिथ्याद्युपपत्तिं विनैवाऽऽधारसारणी च वस्तुतः शुद्धा वा नेति सर्वमबुद्ध्वैव तिथिपत्रं विरचय्या ऽऽत्मप्रसिद्धिं कुर्वन्ति" । गणकतरङ्गिण्याम्" पृ० १३२ ॥

अर्थात्-आज कल प्रायः लोग, थोड़े से छोटे २ फलित ज्योतिष के ग्रन्थ शीघ्र बोध, मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि पढ़ २ कर आपे को ज्योतिषी मान बैठते और

तिथिपत्र बना २ कर अपनी प्रसिद्धि करते हैं और वास्तविक ज्योतिष सिद्धान्त संहिता के ग्रन्थ नहीं पढ़ते इत्यादि। कतिपय ग्रन्थों में ज्योतिष शास्त्र के पांच भेद लिखे हैं जैसा कि-

पञ्चस्कन्धमिदंशास्त्रं होरागणितसंहिता" !
केरलिशकुनश्चैव प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ प्रश्नरत्नटीकाकारः।

अर्थात्--ज्योतिषशास्त्र पांच प्रकार का है, १ होरा, २ गणित, ३ संहिता, ४ केरलि एवं ५ शकुन। इसी प्रकार पूर्वोक्त म० म० पं० सुधाकर जी ने उक्त ग्रन्थ के आरम्भ में लिखा है कि-"अस्ति सिद्धान्तहोरासंहितारूपं स्कन्धत्रयात्मकमष्टादशमहर्षिप्रणीतं ज्योतिःशास्त्रं वेदचक्षुरूपं परम्परातः प्रसिद्धम्। अष्टादशमहर्षयश्च ज्योतिःशास्त्र प्रतिपादका ये तेषां नामानि प्रकाशितानि (१)

अत्र पुलस्त्य पौलिशयोर्भेदेन पराशरेण ज्योतिःशास्त्रप्रवर्त्तका एकोनविंशति संख्याका आचार्य्या अभिहिताः। केचनाष्टादशाचार्य्यानुरोधेन पुलस्त्योमनुविशेषणपरइति वदन्ति। नारदेन तु सूर्यं हित्वा सप्तदशाचार्या एव स्वसंहितायां प्रकाशिताः। तत्रापि ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिरित्यादौ ब्रह्मसूर्यो वसिष्ठोऽङ्गिरित्यन्येपाठं वदन्ति।

अथाहो एते संहिताकारा महात्मनो लगधस्य न कुर्व्वन्ति चर्चाम्। येन महात्मना वेदाङ्गमूलरूपं ज्यौतिषं पञ्चवर्षयुगवर्णन परं विलक्षणं चक्रे।

सूर्येण मयासुरकृते ब्रह्मणा नारदाय व्यासेन स्वशिष्याय वसिष्ठेन माण्डव्यवामदेवाभ्यां पाराशरेण मैत्रेयाय पुलस्त्याचार्यो गर्गात्रिभिश्चैवं स्वस्वशिष्येभ्यो ज्योतिःशास्त्र विशेषाः प्रतिपादिताः। तथाचाह पराशरः।

"नारदाय यथा ब्रह्मा, शौनकाय सुधाकरः।
माण्डव्यवामदेवाभ्याम्, वसिष्ठोयत्पुरातनम् ॥
नारायणो वसिष्ठाय, रामेशायापिचोक्तवान्।
व्यासःशिष्याय सूर्योऽपि, मयासुरकृतेस्फुटम् ॥
पुलस्त्याचार्य्यगर्गात्रि, रोमकादिभिरीरितम्।
विवस्वता महर्षीणाम्, स्वयमेव युगेयुगे ॥
मैत्रेयाय मयाप्युक्तम्, गुह्यमध्यात्मसंज्ञकम्।
शास्त्रमाद्यं तदेवेदम्, लोकेयच्चाति दुर्लभम् ॥

---

(१) -" सूर्यःपितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिपराशरः। काश्यपोनारदोगर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः ॥
लोमशःपौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः। शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥
पराशरश्च——विश्वसृङ्नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि पराशरः। लोमशोयवनः सूर्य श्च्यवनः कश्यपो भृगुः ॥
पुलस्त्यःमनुराचार्यो पौलिशःशौनकोऽङ्गिराः। गर्गोमरीचिरित्येते ज्ञेयाज्योतिःप्रवर्त्तकाः"॥

अथैतेषामाचार्याणां समयादिनिरूपणं तत्तद्रचितसिद्धान्तानामलाभेऽतीव काठिन्यमतो ऽस्माभिस्तोऽर्वाग्ज्योतिषसिद्धान्तग्रन्थकारपुरुषका णामुत्तरोत्तरं खण्डनप्रतिखण्डनद्वारेण बहुविशेषरचयितॄणां यावच्छक्यं तत्तद्ग्रन्थमर्मस्थलानां सम्यगवलोकनेन समयादिकं निरूप्यते ॥

उपरोक्त संस्कृत का आशय—नीचे लिखे सिद्धान्तज्योतिष के ग्रन्थों के नाम तो पाये जाते हैं पर ये ग्रन्थ नहीं मिलते अतएव ये ग्रन्थ कब २ बने इस का पता लगाना कठिन है ॥

सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थों के नाम ॥

	ग्रन्थ नाम ।		ग्रन्थ नाम ।		ग्रन्थ नाम ।		ग्रन्थ नाम ।
१	ब्रह्मसिद्धान्त ।	६	मनुसिद्धान्त ।	११	पुलस्तसिद्धान्त ।	१६	च्यवनसिद्धान्त
२	मरीचिसिद्धान्त ।	७	अङ्गिरासिद्धान्त ।	१२	वशिष्ठसिद्धान्त ।	१७	गर्गसिद्धान्त ।
३	नारदसिद्धान्त ।	८	बृहस्पतिसिद्धान्त ।	१३	पराशरसिद्धान्त ।	१८	पुलिससिद्धान्त ।
४	कश्यपसिद्धान्त ।	९	अत्रिसिद्धान्त ।	१४	व्याससिद्धान्त ।	१९	लोमशसिद्धान्त ।
५	सूर्य्यसिद्धान्त ।	१०	सोमसिद्धान्त ।	१५	भृगुसिद्धान्त ।	२०	यवनसिद्धान्त ।

आधुनिक पौरुष ज्योतिष ग्रन्थ ॥

	ग्रन्थ नाम ।	ग्रन्थ कर्त्ता	ग्रन्थनिर्माणकाल	स्थान
१	आर्य्यभटीय ।	पं० आर्यभट	४२३ शाके	पटना
२	पञ्चसिद्धान्तिका ।	पं० वराहमिहिर	४२७ ”	कालपी
३	ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त ।	पं० ब्रह्मगुप्त	५२० ”	भीलमाल (दक्षिणपश्चिमोत्तर)
४	द्वितीयआर्यसिद्धान्त ।	द्वितीयआर्यभट्ट	८७५ ”	———
५	सिद्धान्त शिरोमणि ।	पं० भास्कराचार्य्य	१०७२ ”	दौलताबाद
६	सिद्धान्तसार्वभौम ।	पं० मुनीश्वर	१५२५ ”	एलचपुर
७	तत्त्वविवेक ।	पं० कमलाकर भट्ट	१५८० ”	विदर्भ

आर्यभटीय ॥

उपलब्ध पौरुष ज्योतिष ग्रन्थों में सब से पुराना—“ आर्यभटीय ” है। आर्यभट नामक ज्योतिषी ने आर्याछन्द के १२० श्लोकों में इस ग्रन्थ को शाके ४२३ में—स्थान कुसुम पुर (विहार प्रान्त के अन्तर्गत पाटलिपुत्र या पटना) में बनाया और इस ग्रन्थ का नाम “आर्यभटीय” रक्खा। लोग इसे “आर्य-सिद्धान्त,” “लघु आर्यसिद्धान्त” या “प्रथमार्य—सिद्धान्त” भी कहते हैं। आर्य-भट स्वयं अपने जन्मस्थान एवं ग्रन्थ निर्माणकाल के विषयमें यों लिखते हैं कि—

“ ब्रह्म कु शशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य ।
आर्य्यभटस्त्विह निगदति कुसुम पुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥१॥ आ० भ० गी० २ श्लो० ७

भा०:--पृथिवी, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, आदि अधिष्ठित परब्रह्म को नम-

स्कार कर आर्यभट् इस 'कुसुम पुर' (पटना) के लोगों से समादृत आर्यभटीय ग्रन्थ को कहते हैं ॥ १ ॥ पुनः—

"षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।

त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥ आ०भ०गी०३श्लो०॥१०॥

भा०:—इस वर्त्तमान २८ वीं चौयुगी के चतुर्थ भाग में से तीसरे भाग के ६० वर्ष बीतने पर मेरा (आर्यभट का) जन्म हुआ। और मेरे जन्म काल से अब तक २३ वर्ष बीत गयीं। वर्त्तमान महायुग के चतुर्थपाद के ३६०० सौ वर्ष बीतने पर मेरी उमर २३ वर्ष की हुई। इसी समय मैं ने इस ग्रन्थ को रचा ॥ १० ॥ पुनः आर्यभट ने यह भी लिखा है कि मैं ने यह ग्रन्थ प्राचीन वैदिक ज्योतिष के अनुसार ही बनाया है—इसे नवीन रचना समझ कर लोग इस की निन्दा न करें:—

" सदसज्ज्ञान समुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन ।

सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नं स्वमति नावा ॥" आ०भ०गी०४श्लो०४९

भा०:—ज्योतिषशास्त्ररूपी समुद्र में अपनी बुद्धिरूपी नौका पर सवार हो समुद्र में निमग्न होकर ब्रह्मा (ब्रह्माकृत वेदाङ्ग ज्योतिष) की कृपा से सद्ज्ञान रूप रत्न को मैं ने (आर्यभट ने) बाहर किया अर्थात् प्रकाशित किया॥४९॥पुनः—

" आर्यभटीयं नाम्ना पूर्वं स्वायम्भुवं सदा सद्यत् ।

सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रति कञ्चुकं योऽस्य ॥ आ०भ०गी०४श्लो०५०

भा०:—आदि काल में जिस ज्योतिषशास्त्र को वेद से निकाल कर लोक में—प्रचार किया गया उसी ज्योतिषशास्त्र को अर्थात् वैदिक ज्योतिषशास्त्रको मैं ने (आर्यभट ने) "आर्यभटीय" नाम से प्रकाशित किया। इस शास्त्र में जो कोई व्यक्ति मिथ्या दोष दिखलाकर इस का तिरस्कार करेगा—उस के सुकृत, पुण्य वा यश एवं आयु का नाश होगा ॥ ५० ॥

इस "आर्यभटीय" में दो मुख्य भाग हैं और १०८ आर्या छन्द के श्लोक हैं अतएव कोई २ इस को "आर्याष्टशत" भी कहते हैं। इन दो भागों को कोई २ टीकार—भिन्न २ दो ग्रन्थ मानते हैं—जैसा कि—इस के टीकाकारों में से सूर्ययज्वन्—टीकाकार ने—इन भागों को दो प्रबन्ध मानकर प्रत्येक की आदि में विघ्न शान्त्यर्थ मङ्गलाचरण किया है; अतएव बहुत से लोगों ने इन दो भागों को भिन्न २ ग्रन्थ माना है। परन्तु ग्रन्थ देखने से मालूम होता है कि एक भाग दूसरे भाग पर अवलम्ब रखता है। अर्थात् यदि एक को छोड़ दिया जावे तो दूसरे का कुछ उपयोग नहीं रहता। इस लिये दोनों को मिलाकर एक सिद्धान्त मानना ठीक है। स्वयं आर्यभट ने भी प्रथम भाग का कोई पृथक नाम

नहीं रक्खा है और न उस के अन्त में उपसंहार ही किया है, एकत्र पूरे (दोनों भागों का) ग्रन्थ के अन्त में ही उपसंहार किया है और "आर्यभटीय" ऐसा नाम रक्खा है। इसीप्रकार ग्रन्थकार ने ग्रन्थ भर में चार पाद रक्खे हैं पाद का अर्थ चौथा भाग है और चतुर्थ भाग किसी पूरे १६ अंशों की वस्तु में होता है-अतएव प्रथम पाद के पूर्व दो श्लोक, प्रथम पाद में १० श्लो०, द्वितीय में ३३ श्लो०, तृतीय पाद में २५ और चतुर्थ में ५०, यों सब मिल कर १२० श्लोक हैं। परन्तु "आर्याष्टशत" इस लेख को देख कर बहुतसे युरोपियन विद्वानों ने भ्रम से इस ग्रन्थ में ८०० श्लोकों का होना माना है। जो श्रीमान् डाक्टर करण साहब के-सन् १८७४ ई० के छप वाये संस्कृत टीका-सहित आर्यभटीय के देखने से पाश्चात्य विद्वानों का ८०० आर्या श्लो० होने का भ्रम दूर हुआ। आर्यसिद्धान्त नाम से एक दूसरा भी ज्योतिष ग्रन्थ-प्रसिद्ध है-उस पर विचार किया जाता है।

द्वितीय आर्य्यसिद्धान्त ॥

द्वितीय आर्यभट शाके ८७५ में हुए " प्रथम आर्यभट " के अतिरिक्त यह एक द्वितीय "आर्यभट" नवीन हुए; अतएव इन्हें "द्वितीयआर्यभट" और इन के ग्रन्थ को " द्वितीयआर्यसिद्धान्त " कहते हैं। पूना के " दक्षिण-कालिज " में " द्वितीय आर्यसिद्धान्त की एक प्रति है जिस पर " लघुआर्य-सिद्धान्त " लिखा है, परन्तु स्वयं ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ में ग्रन्थ का नाम "लघु" या "बृहत्" कुछ भी नहीं लिखा है। इस ग्रन्थ के पहिली " आर्या " (छन्द) में लिखा है कि—

" विधि ध खगागम पाटी कुट्टक वीजादि दृष्टशास्त्रेण।
आर्यभटेन क्रियते सिद्धान्तो रुचिर आर्याभिः " ॥

भाः-इन ने अपने ग्रन्थ को "सिद्धान्त" ऐसा लिखा है इस के पूर्व के " आर्यभट " से यह नवीन हैं, (जो आगे सिद्ध होगा) इसलिये इन को "द्वितीय आर्यभट" और इन के सिद्धान्त को "द्वितीय आर्यसिद्धान्त" कहते हैं। इन ने अपना ग्रन्थ निर्माण या जन्मकाल के विषय में कुछ नहीं लिखा है। किन्तु " पराशरसिद्धान्त " ग्रन्थ का मध्यम मान दिया है इससे इन ने दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

"एतत् सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौ युगे जातम्" ॥ २ ॥ अध्याय २ ॥

इस के अनुसार कलियुग के थोड़े ही समय वीतने पर ये दोनों सिद्धान्त रचे गये ऐसा दिखलाने का-इन का उद्देश्य है।

परन्तु ब्रह्मगुप्त के अनन्तर यह ग्रन्थ रचा गया ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इस का कारण यह है कि यह अपने सिद्धान्त को कलियुग के आरम्भ ही में बनना बतलाते हैं, इस से अपने ग्रन्थ को पौरुष ग्रन्थकारों में गणना करते हैं। ब्रह्म गुप्त के पहिले इन के ग्रन्थोल्लिखित वर्षमान या अन्यान्य मानों का वस्तुतः कहीं प्रचार होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। और ब्रह्म गुप्त ने अपने ग्रन्थ में आर्यभट-के दूषणों को सब से पहिले दिखलाया है। इस से ब्रह्मगुप्त के पहिले प्रथम--आयभट हुए यह सिद्ध होता है। द्वितीय आर्यभट के सिद्धान्त के किसी विषय का उल्लेख ब्रह्मगुप्त ने नहीं किया, यदि द्वितीय-आर्यभटग्रन्थ उस समय या उससे पहिले बना होता तो अवश्य इस का भी उल्लेख ब्रह्मगुप्त करते। "पञ्चसिद्धान्तिका" (जो शाके ४२७ का बना है) में अय गति का उल्लेख कुछ भी नहीं दीखता। पहिला आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, इन के ग्रन्थों में अयनगति का वर्णन नहीं है और इस द्वितीय आर्यसिद्धान्त में इसकावर्णन है। अधिक क्या कहा जावे-प्रथम आयभट के जो २ दूषण ब्रह्मगुप्त ने दिखलाये हैं, उस २ के उद्धार का यत्न, द्वितीय, आर्यभट ने किया है। इन के ग्रन्थ में युगपद्धति (सत, त्रेता, द्वापर, कलि) है; कल्प का आरम्भ रविवार को माना है, और पहिला आ० भ० में युग के आरम्भ में मध्यमग्रह एकत्र रहते, स्पष्टग्रह एकत्र नहीं रहते ऐसा लिखा है। इसका खण्डन ब्रह्मगुप्त ने किया है (अ० २। आर्या ४६) परन्तु द्वितीय आर्यभट के प्रमाण से सृष्टि के आरम्भ में स्पष्ट ग्रह एकत्र होते हैं इन सब प्रमाणों से ब्रह्मगुप्तके अनन्तर अर्थात् शाके ५८७ के अनन्तर २रे आ० भ० थे। यह उस समय का प्राचीन सिद्धान्त माना जाता और अर्वाचीन सिद्धान्त सब से पहिले आर्यकुलभूषण पं० भास्करा चार्य ने रचा। सिद्धान्त शिरोमणि के स्पष्टाधिकार के ६५ वें श्लोक में लिखा है कि "आर्यभटादिभिः सूक्ष्मत्वार्थं द्रेष्काणोदयाः पठिताः" द्रेष्काण अर्थात् राशि का तीसरा अंश (१० अंश)। प्रथम आर्यभट ने लग्नमान को तीस २ अंशों में किया है। दश २ अंशों का नहीं। परन्तु द्वितीय आ० भ० ने अ० ४ आर्या ३८-४० में द्रेष्काणोदय (लग्न-मान) कहा है। इस प्रमाण से द्रेष्काणोदय साम्प्रत द्वितीय आर्यभट को छोड़ अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा है। इस के अनुसार भास्कराचार्य के उक्त वाक्यानुसार आ० भ० पहिला नहीं, किन्तु द्वितीय आ० सि० ही सिद्ध होता है। जिस के अनुसार शाके १०७२ के पूर्व द्वितीय आर्यभट थे, ऐसा निश्चय होता है। द्वितीय आ० भ० ने अयनांश निकालने की रीति दियी है; इस के अनु-

सार अयनगति एकसी नहीं रहती वरण उस में बहुत न्यूनाधिक्य होता है। परन्तु अयन गति सर्वदा एकसी रहती–ऐसा मानने पर भी इसकी सूक्ष्म गति मानी जाती है जिससे उस में बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है। आधुनिक सूर्य–सिद्धान्तोक्त अयनगति सब काल में एकसी रहती है परन्तु इस का काल ज्ञात नहीं ऐसा लिखा है।

" राजमृगांक " ग्रन्थ में (शाके ९६४) अयनगति सब काल में एकसी रहती है ऐसा लिखा है। इस ग्रन्थ को पूर्व के बने ग्रन्थों में इस विषय के होने का प्रमाण अब तक नहीं मिला है। इस के अनुसार अयनगति का ज्ञान (बराबर) होने के पहिले द्वि० आ० भ० भटोत्पल के टीका में लिखा है। परन्तु दूसरे आ० भ० में ऐसा नहीं लिखा है जिस से द्वितीय आर्यभट भटोत्पल के पहिले थे ऐसा निश्चयं होता है।

उपरोक्त प्रमाणों से द्वि० आ० भटोक्त मेष-संक्रमण काल के उल्लेखानुसार–द्वितीय आर्यभट का समय ८७५–सिद्ध होता है।

इस द्वितीय आर्यसिद्धान्त में १८ अधिकार और ६२५ आर्या छन्द के श्लोक हैं। प्रथम १३ अध्यायों में करण ग्रन्थ के निराले २ अधिकारों का वर्णन है, चौदहवें में गोल सम्बन्ध विचार एवं प्रश्न हैं, १५ वें में १२० आर्या श्लो० में अङ्क गणित एवं क्षेत्रफल, घनफल का वर्णन है, १६ वें में भुवन कोश का वर्णन है, १७ वें में ग्रह मध्य की उपपत्ति इत्यादि हैं और १८ वें में बीजगणित, कुट्टक गणितहैं। इस में ब्रह्म गुप्त के ब्र० सि० से भी अधिक विषयहैं। इन ने संख्या दिख लाने का क्रम प्रथम आर्यभट से भी विलक्षण ही दिया है जैसा कि—

वर्ण	वर्णबोधितसंख्या	वर्ण—	संख्या
क, ट, प, य,=	१	च, त, ष=	६
ख, ठ, फ, र=	२	छ, थ, स=	७
ग, ड, ब, ल=	३	ज, द, ह=	८
घ, ढ, भ, व=	४	झ, ध=	९
ङ, ण, म, श=	५	ञ, न=	०

"अङ्कानां वामतो गतिः" यह नियम प्रथम आर्यभट ने नहीं लिखा है। हम ने यहां "द्वितीयआर्यभट" के समय आदि का विचार इस लिये किया है कि जिस से पाठकों को यह भ्रम न हो कि दोनों आर्यभटीय ग्रन्थों में पुराना कौनसा है–एवं दोनों ग्रन्थ एक ही ग्रन्थकार द्वारा बने या भिन्न २ द्वारा

इत्यादि। अब इस का आगे "प्रथम आर्यभटीय" का अनुवाद आरम्भ होगा

हमारे देशके बहुतसे अमूल्य ग्रन्थ तो अङ्गरेजों से पहिले के आये हुए विधर्मियं
के [illegible] आदि कारणों से नष्ट भ्रष्ट हुए, उन से बचे बचाये ग्रन्थ, देश व
[illegible] अज्ञों (मूर्ख) के पास सड़ते हैं और उनका प्रचार नहीं होता, इससे बचे
बचाये ग्रन्थ हमारे परम माननीय अङ्गरेजी गवर्नमेण्ट के सुप्रबन्ध से पुस्त
कालयों तथा लन्दन, जर्म्मन आदि देशों में सुरक्षित हैं, परन्तु बड़े शोक
की बात है कि जिन भारतवासियों के घर का रत्न समुद्र पार जावे, वे
भङ्ग के तरङ्ग की गाढ़ निद्रा में कुम्भकरण की भांति खर्राटे मार कर सोते हैं
और जगाने पर भी नहीं जगते—और इन्हीं अमूल्य ग्रन्थों का तर्जुमा विला
यत आदि से होकर आता है तो [illegible] मोल ले रहे हैं।

हमने अपने देश के गौरव स्वरूप ज्योतिष के पुराने ग्रन्थ—आर्यभटीय
की एक प्रति जर्मन देश से मंगा कर पाठकों के अवलोकनार्थ सटीक सानुवाद
प्रकाशित किया है। आशा है कि हमारे पाठकगण इस की एक २ प्रति
मंगा कर अपने स्वदेशीय रत्नों का संचय कर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे

अनुवादक.



आर्यभटीयस्य विषयानां सूचीपत्रम् ॥

द्वितीय पाद की विषय सूची समाप्त हुयी।

आर्यभटीय की विषयसूची समाप्त हुई ॥

॥ ओ३म् ॥

अथार्यभटीयं ज्योतिषशास्त्रम् ॥

"यत्तेजः प्रेरयेत् प्रज्ञां सर्वस्य शशिभूषणम् ।
मृगटङ्काभयेष्टाङ्कन्त्रिनेत्रन्तमुपास्महे ॥
लीलावती भास्करीयं लघु चान्यच्च मानसम् ।
व्याख्यातं शिष्यबोधार्थं येन प्राक्तेन चाधुना ॥
तन्त्रस्यार्यभटीयस्य व्याख्याल्पा क्रियते मया ।
परमादीश्वराख्येन नाम्नात्र भटदीपिका ॥"

तत्रायमाचार्य आर्यभटो विघ्नोपशमनार्थं स्वेष्टदेवतानमस्कारं प्रतिपाद्य वस्तुकथनञ्चार्यरूपया करोति ॥

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परं ब्रह्म ।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम्॥

इति ॥ कं ब्रह्माणं एकं कारणरूपेणैकं अनेकं कार्यरूपेणानेकं सत्यां देवतां [illegible]व एवदेवता। स्वयम्भूरेव पारमार्थिको देव अन्ये तेन सृष्टा इत्यपारमार्थिकाः। परब्रह्म जगतो मूलकारणं त्रिमूर्त्यतीतं सर्वव्याप्तं ब्रह्म स्वयम्भूरित्युक्तो भवति । आर्यभट एवं ब्रह्माणं प्रणिपत्य गणितं कालक्रियां गोलम्—इत्येतानि त्रीणि वस्तूनि निगदति । परोक्षत्वेन निर्देशान्निगदतीति वचनम्। तत्र गणितन्नाम सङ्कलितमिश्रश्रेढीदर्शधीकुट्टाकारच्छायाक्षेत्राद्यनेकविधम् । इह तु कालक्रियागोलयोर्यावन्मात्रं परिकरभूतं तावन्मात्रं सामान्यगणितमेव प्रायशः प्रतिपादितम् । अन्यच्च किञ्चित्। कालस्य क्रिया कालक्रिया । कालपरिच्छेदोपायभूतं गृहगणितं कालक्रियेत्यर्थः । गोलन्नाम ब्रह्माण्डकटाहमध्यवर्त्याकाशमध्यग्रस्थंहनक्षत्रकक्ष्यात्मकं स्वमध्यस्थघनवृत्तभूमिकमपक्रमाद्यशेषविशेषोपेतं प्रवाहाख्यवायुप्रेरितं कालचक्रज्योतिश्चक्रभपञ्जरादिशब्दवाच्यं गोलः । स च

वृत्तक्षेत्रत्वाच्चतुरस्राद्यनेकक्षेत्रकल्पनाधारत्वाच्च गणितविशेषगोचर एव । एतत्त्र
यमपि द्विविधम् । उपदेशमात्रावसेयन्तन्मूलन्यायावसेयञ्चेति । तत्र युगप्रमाण
मन्दोच्चादिवृत्ताद्यपक्रमाद्युपदेशमात्रावसेयम् । इष्टदिग्ग्रहगतीष्टापक्रमस्वाहोरा
त्रचरदलादिच्छायानाडिकाद्युपदेशसिद्धयुगप्रमाणादितो न्यायावसेयम् । एवं द्वै
विध्यम ॥ अत्र स्वयम्भूप्रणामकरणेन करिष्यमाणस्य तन्त्रस्य ब्रह्मसिद्धान्त
मूलमिति च प्रदर्शितम् ॥

अथोपदेशावगम्यान्युगभगणादीन् सङ्क्षेपेण प्रदर्शयितुं दशगीतिकासूत्रं क
रिष्यन् तदुपयोगिनीं परिभाषामाह ॥

भा०:–अनेक देवताओं में परमश्रेष्ठ ब्रह्मा–जगत् स्रष्टा (जिस ने अनेक
देवों को रचा) को प्रणाम कर आर्यभट (ग्रन्थकार)' गणित , 'कालक्रिया'
और ' गोल विद्या ' इन तीन वस्तुओं को वर्णन करते हैं ॥

वर्गाक्षराणिवर्गेऽवर्गे ऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ।

खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ॥

वृति=वर्गाक्षराणि वर्गे । ककारादीनि मकारान्तानि वर्गाक्षराणि । तानि
वर्गस्थाने एकशतायुताद्योजस्थाने स्थाप्यानि । एवं क्रमेण संख्या वेद्या ॥ अ
वर्गे अवर्गाक्षराणि । यकारादीनि अवर्गाक्षराणि । तान्यवर्गस्थाने दशसहस्र
लक्षादियुग्मस्थाने स्थाप्यानि । कात् ककारादारभ्य संख्या वेद्या । ककार
एकसंख्यः खकारो द्विसंख्य एवं क्रमेण संख्या वेद्या । जकारो दशसंख्यः । टकार
एकादशसंख्यः । नकारो त्रिंशतिसंख्यः । मकारः पञ्चविंशतिसंख्यः । एवं लि
पिपाठक्रमेण संख्या वेद्या ॥ ङ्मौ यः । ङकारमकारयोर्योगेन तुल्यो यकारः
पञ्चसंख्यायाः पञ्चविंशतिसंख्यायाश्च योगस्त्रिंशत्संख्य इत्यर्थः । अत्र प्रथम
स्थानमङ्गीकृत्य त्रिंशदित्युक्तं नतु द्वितीयस्थानमङ्गीकृत्य । द्वितीयस्थाने त्रि
त्रिसंख्यो यकारः । इत्युक्तं भवति । रेफादयः क्रमेण द्वितीयस्थाने चतुरादि
संख्यास्स्युः। हकारो द्वितीयस्थाने दशसंख्यः शतसंख्यावाचक इत्यर्थः । एवम
वर्गस्थानविहितापि हकारसंख्या संख्यान्तरत्वेन वर्गस्थाने स्थाप्यते । एवं अ
कारादिसंख्या वर्गस्थानविहिताप्यवर्गस्थाने संख्यान्तरत्वेन स्थाप्यते । एतद्
न्यायतस्सिद्धम् । अत्रगतुल्यो यकार इति वक्तव्ये ङ्मौ य इति वर्णद्वयेन यदु
तेन संयुक्तैरप्यक्षरैस्संख्या प्रतिपादयिष्यत इति प्रदर्शितं भवति ॥ शून्यभूता
नामनङ्गीकृतसंख्याविशेषाणां के प्रयुज्यन्ते । इत्यत्राह । खद्विनवके स्वरा न

र्गेऽवर्गे । इति । द्विनवके ऽष्टादशके नव स्वराः क्रमेण प्रयुज्यन्ते । अ, इ,
, ऋ, लृ,ए,ऐ, ओ,औ । इत्येते नव स्वराः । एतदुक्तं भवति । ककाराद्यक्षर-
तास्स्वरास्स्थानप्रदर्शका भवन्ति न संख्याविशेषप्रदर्शका इति । कथं नव-
ंख्या अष्टादशके प्रयुज्यन्ते । इत्यत्राह । वर्गेऽवर्गे । इति । वर्गस्थानेषु न-
स्वकाराद्या नव स्वराः क्रमेण प्रयुज्यन्ते । तथा अवर्गस्थानेषु च त एव । ए-
मन्यैरपि कल्प्यम् । तथा प्रथमस्वरयुतैर्यकारादिभिर्विहिता संख्या प्रथमे
अवर्गस्थाने स्थाप्या । द्वितीयस्वरयुतैर्द्वितीये अवर्गस्थाने एवमन्यैरपीति । ए-
मष्टादशस्थानेषु संख्या वेद्या । यदा पुनस्ततोऽधिकापि संख्या केनचिद्विवक्षि-
ता तदा कथमित्यत्राह । नवान्त्यवर्गे वा । इति । नवानां वर्गस्थानानामन्त्ये
ऊर्ध्वगते वर्गस्थाननवके तथा नवानामवर्गस्थानानामन्त्ये ऊर्ध्वगते अवर्ग-
स्थाननवके च एते नव स्वराः प्रयुज्यन्ते वा । केनचिदनुस्वारादिविशेषेण
युक्ताः प्रयोज्या इत्यर्थः । शास्त्रव्यवहारस्त्वष्टादशस्थानानि नातिवर्तते ॥

अथ चतुर्युगे रव्यादीनां भगणसंख्यामाह ।

भा०.–वर्ग के अक्षरों को (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ,
ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म,) वर्ग के स्थान में एक से अयुत तकको
"विषम" स्थान में रक्ख कर संख्या जाननी चाहिये । इसी प्रकार अवर्ग में
अवर्ग के अक्षर जानना यकारादि (य, र, ल, व, श, ष, स, ह,) अवर्ग के स्था-
न में दशसहस्र, लक्ष, आदि को "सम" स्थान में रक्खे। ककारसे लेकरसंख्या
जाननी अर्थात् क,से १, ख,से, २ ग,से ३ इत्यादि, म,से २५ इसप्रकार क को १ सं-
ख्या मानकर म पर्य्यन्तक्रमशः २५ संख्याहोगी। ङ, और म इन दोनों कीसंख्या
का योग "य' की संख्याहै। प्रथम स्थान में य ३० का बोधक, द्वितीय स्थान
में ३ का, इसी प्रकार 'र' ४० का बोधक और द्वितीय स्थान में ४ का बोधक
है। हकारादि भी इसी प्रकार जानना। यहां ककारादि में जो अकारादि स्व-
र संयुक्त हैं वे संख्या प्रदर्शक नहीं हैं किन्तु स्थान प्रदर्शक हैं। अ, इ,उ, ए,ऐ,
ओ, औ, ऋ, लृ, ये नव स्वर हैं–तो १८ संख्या स्थानों में नवस्वर क्यों
कर रक्खे जावेंगे ? वर्ग स्थान में नव स्वर क्रम से प्रयुक्त होते हैं, उसी प्र-
कार अवर्ग स्थान में भी वेही नव स्वर हैं। इसी प्रकार औरों का भी जानना
प्रथम स्वर युक्त यकारादि द्वारा संख्या कही जावे-उस को पहिले अवर्ग स्था-
न में, और द्वितीय स्वर युक्त को द्वितीय अवर्ग स्थान में रखनी । इसी प्र-

कार और भी १८ संख्या जाननी चाहिये। अगर १८ से अधिक संख्या हों, तो इसी नियमसे जानना। परन्तु शास्त्रों में १८ संख्या से अधिक का व्यवहार नहीं है।

भा०:-निम्न लिखित चक्र से (अक्षर द्वारा जो इस ग्रन्थ में संख्याओं का निर्देश हुआ है) गीतिका का अर्थ किया गया है।

संख्याज्ञापक चक्र।

अक्षर । संख्या।	अक्षर संख्या।
अ=१	लृ=१००००००००
इ=१००	ए=१००००००००००
उ=१००००	ओ=१००००००००००००
ऋ=१००००००	औ=१००००००००००००००००

क=१	च=६	ट=११	त=१६	प=२१	य=३०	श=७०
ख=२	छ=७	ठ=१२	थ=१७	फ=२२	र=४०	ष=८०
ग=३	ज=८	ड=१३	द=१८	ब=२३	ल=५०	स=९०
घ=४	झ=९	ढ=१४	ध=१९	भ=२४	व=६०	ह=१००
ङ=५	ञ=१०	ण=१५	न=२०	म=२५		

और नव स्वरों का योग, यदि वर्ग या अवर्ग अक्षरों के साथ होता है, तो वे १८ स्थानों के प्रदर्शक होते हैं। जैसेः-

क क्+अ=१
कि क्+इ=१००
कु क्+उ=१००००
कृ क्+ऋ=१००००००
क्लृ क्+लृ=१००००००००
के क्+ए=१००००००००००
कै क+ऐ=१०००००००००००००
को क्+ओ=१००००००००००००००
कौ क्+औ=१००००००००००००००००
इसी प्रकार 'ख' का भी जानना।
ख ख्+अ=२
खि ख्+इ=२००
खु ख्+उ=२००००

इसी प्रकार और व्यञ्जनों का भी जानना।
य और य्+अ=३०
यि य्+इ=३०००
यु य्+उ=३०००००
इत्यादि।
और
र र्+अ=४०
रि र्+इ=४०००
रु र्+उ=४०,००० इत्यादि

इति संख्यापरिभाषा-समाप्ता।

युगरविभगणाः ख्युघृ शशि चयगियिङुशुछ्लृ ङिशिबुण्लृ
ष्खृप्राक्शनि ढुङ्विघ्व गुरु खिच्युभ कुज भद्लिझ्नुखृ भृगु-
बुध सौराः ॥१॥

अष्टादशस्थानगतानां संख्यानां संज्ञा तु:-

"एकदशशतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः।

अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कवस्तस्मात् ॥

जलधिश्चान्त्य मध्यं परार्द्धमिति दशगुणोत्तरं संज्ञाः"

इत्यनेन वेद्या ॥ युगरविभगणाः । चतुर्युगे रवेर्भगणाः ख्युघृ इति । उकारयु-
तखकारेणायुतद्वयमुक्तम् । उकारयुतयकारेण लक्षत्रयम् ।एवं सर्वत्र हल्द्वये एक एव
स्वर उभयत्र सम्बध्यते । ऋकारयुतघकारेण प्रयुतचतुष्कम् । एवमनेन न्यायेन
सर्वत्र संख्या वेद्या ॥ शशि । शशिन इत्यर्थः । सूत्रे ल्युविभक्तिकोऽपि प्रयोग-
स्स्यात् । चयगियिङुशुछ्लृ इति युगभगणाश्शशिनः। च षट् । य त्रिंशत् । गि
त्रिशतम्। यि त्रिसहस्रम्। ङु अयुतपञ्चकम् । शु लक्षसप्तकम् । छृ प्रयुतसप्तकम् ।लृ
कोटिपञ्चकम् । इति ॥ कु भूमेरित्यर्थः । ङिशिबुण्लृष्खृ इति भगणाः । प्राक्
प्राग्गत्या सम्भूता भगणा इत्यर्थः । ण्लृ पञ्चदशार्बुदम्। नवमस्थाने पञ्चदशम-
स्थाने एकश्चेत्यर्थः। खृ प्रयुतद्वयम् । षृ कोट्यष्टकम्। भूमेर्यत्प्राङ्मुखंभ्रमणं
तस्य चतुर्युगे संभूता संख्यात्रोक्ता । भूमिस्त्वचलेति प्रसिद्धा तस्याःकथमत्र भ्र-
मणकथनम्। उच्यते। प्रवहाक्षेपात्पश्चिमाभिमुखं भ्रमतो नक्षत्रमण्डलस्य मि-
थ्याज्ञानवशाद्भूमेर्भ्रमणं प्रतीयते तदङ्गीकृत्येह भूमेर्भ्रमणमुक्तम् । वस्तुतस्तु
न भूमेर्भ्रमणमस्ति । अतो नक्षत्रमण्डलस्य भ्रमणप्रदर्शनपरमत्र भूभ्रमणकथ-
नमितिवेद्यम् । वक्ष्यति च मिथ्याज्ञानम्

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।

अचलानि भानि समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥

इति । अहोरात्रेण हि भगोलस्य समस्तभागभ्रमणादद्धं च रवेर्दिनगतितुल्यभागो
ऽपि भ्रमति । अतो रवेर्युगभगणयुतभूदिवसैस्तुल्या नक्षत्रमण्डलस्य भ्रमणमि-
तिभवति । सैवात्रोक्ता स्यात् ॥ शनि ढुङ्विघ्व इति । शनेर्युगभगणाः । ढु-
अयुतानाञ्चतुर्दश । ङि पञ्चशतम् । वि षट्सहस्रम् । घ चत्वारि । व षष्टिः ॥

गुरु ख्रिच्युभ इति । गुरोर्भगणाः। खि इति द्विशतम् । रि इति चतुस्सहस्रम् । चु इत्ययुतषट्कम् । यु इति लक्षत्रयम्। भ इति चतुर्विंशतिः॥ कुज भद्लिझ्नुखृ इति । कुजस्य भगणाः । भ चतुर्विंशतिः । दि अष्टशताधिकसहस्रम् । लि पञ्च सहस्रम् । झु अयुतनवकम्। नु लक्षद्वयम्। खृ प्रयुतद्वयम्। अत्र संख्यायोगे भगणसिद्धिः॥ भृगुबुध सौराः। भृगुबुधयोर्युगभगणास्सौरा एव। सूर्यभगणाः ख्युघृ एव॥

एवं प्रथमसूत्रेण रव्यादीनां युगभगणान् प्रदर्श्य द्वितीयसूत्रेण चन्द्रोच्चभगणान् बुधभृग्वोश्शीघ्रोच्चभगणांश्च शेषाणां कुजगुरुशनैश्चराणां शीघ्रोच्चञ्च चन्द्रपातभगणांश्च भगणारम्भकालञ्चाह ।

चन्द्रोच्च ज्रुष्खिध बुध सुगुशिथृन भृगु जषबिखुछृ शेषार्काः।
बुफिनच पातविलोमा बुधान्ह्यजार्कोदयाच्च लङ्कायाम् ॥२॥

चन्द्रोच्चस्य ज्रुष्खिध इति भगणाः । र्जुष्खिध इति वा पाठः । जु अयुताष्टकम्। रु लक्षचतुष्कम् । षि अष्टसहस्रम्।खि द्विशतम्। ध एकोनविंशतिः॥ बुधस्य शीघ्रोच्चभगणाः सुगुशिथृन इति। सु लक्षनवकम् ।गु अयुतत्रयम्। शि सप्तसहस्रम्।थृ प्रयुतसप्तदशकम्।न विंशतिः॥ भृगोश्शीघ्रोच्चभगणा जषबिखुछृ इति ज अष्टौ। ष अशीतिः। बि शतत्रयाधिकद्विसहस्रम् । खु अयुतद्वयम् ।छृ प्रयुतसप्तकम्॥ शेषार्काः। शेषाणां कुजगुरुमन्दानां शीघ्रोच्चभगणा आर्काः । अर्कभगणा एव । उपरिष्टादेषां मन्दोच्चांशान्वक्ष्यति । अत इहोक्ताश्शीघ्रोच्चभगणा इति सिध्यति॥ बुफिनच इति पातस्य चन्द्रपातस्य विलोमात्मकभगणाः । बु अयुतानां त्रयोविंशतिः । फि शतद्वयाधिकसहस्रद्वयम् । न विंशतिः । च षट् ॥ कुजादीनां पातभगणान्वक्ष्यति । अर्कस्य तु विक्षेपो न विधीयते । अत एते चन्द्रपातस्य भगणा इति सिध्यति । उच्चपातानां व्योम्नि दर्शनं नास्ति । तथा च ब्रह्मगुप्तः—

"प्रतिपादनार्थमुच्चाः प्रकल्पिता ग्रहगतेस्तथा पाताः ।"

इति॥ बुधाह्न्यजार्कोदयाच्च लङ्कायाम्। कृतयुगादौ बुधवारे लङ्कायां सूर्योदयमारभ्य । अजात् मेषादिमारभ्य राशिचक्रे गच्छतां रव्यादीनां भगणा अत्रोक्ता इत्यर्थः॥सूर्योदयो मध्यसूर्योदयः कल्पारम्भस्तु स्फुटसूर्योदयः। तत्र मध्यमस्फुटयोर्विशेषाभावात् ॥ कल्पकालान्तर्गतमनून् गतकालञ्च तृतीयसूत्रेणाह ।

ग्रहगण	युगीय भगणसंख्या।
पृथिवी	१५८२२३७५००
सूर्य्य	४३२००००
चन्द्रमा	५७७५३३३६
बृहस्पति	३६४२२४
मङ्गल	२२९६८२४
शुक्र	४३२००००
बुध शीघ्रोच्च	१७९३७०२०
सावन दिन	१५७७९१७५००
चन्द्रोच्चभगण	४८८२१९
चन्द्रपातभगण	२३२२२६
बुधपातभगण	४३२००००
शुक्रशीघ्रोच्चभगण	७०२२३८८
शनिभगण	१४६५६४
सौर मास	५१८४००००
अधिमास	१५९३३३६
चान्द्रमास	५३४३३३३६
तिथि	१६०३००००८०
क्षयाह	२५०८२५८०

वर्षमान दिन ३६५ घ १५ प ३१ वि १५ ॥ १, २ ॥

काहोमंनवो ढ मनुयुग श्ख गतांस्ते त मनुयुग छ्ना च ।
कल्पादेर्युगपादा ग च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥३॥

काहोमनवो ढ । क कस्य ब्रह्मणः । अहः अह्नि मनवो ढ चतुर्दश भवन्ति । मनुयुग शृख । एकैकस्य मनोः काले युगानि चतुर्युगाणि शृख । श सप्ततिः । ख द्वयम् । द्वासप्ततिरित्यर्थः । गतास्ते च । एतस्माद्वर्तमानात्कलियुगात्पूर्वमतीतास्ते मनवः । च षट् । मंनुयुग छ्ना च । वर्तमानस्य सप्तमस्य मनोः । अतीतानि चतुर्युगाणि छ्ना । छा सप्त । ना विंशतिः । सप्तविंशतिरित्यर्थः । स्वराणां ह्रस्वदीर्घयोर्न विशेषः । अकारस्स्थाने एवाकारः ॥ कल्पा-

दयुगपादा ग च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम् । युगपादा ग च । वर्तमानस्याष्टा-विंशस्य चतुर्युगस्य ग पादाश्च । त्रयः पादाश्च । गता भवन्ति । अस्मिन्सू-त्रेऽनाद्य चकारत्रयं न सख्याप्रदर्शकम् ॥ कदा एवमित्यत्राह । कल्पादेर्भारताद्गुरु-दिवसात्पूर्वमिति । भारता युधिष्ठिरादयः । तैरुपलक्षितो गुरुदिवसो भारतगु-रुदिवसः । राज्य चरतां युधिष्ठिरादीनामन्त्यो गुरुदिवसो द्वापरावसानगत इत्यर्थः । तस्मिन्दिने युधिष्ठिरादयो राज्यमुत्सृज्य महाप्रस्थानं गता इति प्र-सिद्धिः । तस्माद्गुरुदिवसात्पूर्वं कल्पादेरारभ्य गता मन्वादय इहोक्ताः । इत्य-र्थः। अस्मिन्पक्षे युगानि परस्परसमानि युगपादश्च चतुर्युगचतुर्थांशः । अन्य-था चेत् बुधवारादिके चतुर्युगे कलियुगारम्भश्शुक्रवारे न संभवति । अतः कृ-तयुगारम्भो बुधवार इति । बुधान्ह्यजार्कोदयाच्च लङ्कायामिति । पठिताश्च प्रकाशिकायां कलियुगादेः प्रागतीताः कल्पदिवसाः शराश्विषट्खाद्रिशराद्रि-वेदकृतेषुयुग्ममखरसमितः स्यात् । इति । अहर्गणो नात्र विशेष्यः । अनेनापि युगानां समयस्सिध्यति ॥ चतुर्थेन सूत्रेण राश्यादिविभागमाकाशकक्ष्यायोजन-प्रमाणं प्राणकलयोः क्षेत्रसाम्यं ग्रहनक्षत्रकक्ष्यायोजनप्रमाणञ्चाह ।

भा:—ब्रह्मा के दिनमें चौदह मनु होतेहैं। और एक मन्वन्तर में ७२ महायुग होते हैं । छः मनु पूरे वीत गये, सातवें मनु के २७ वां युग भी पूरा वीत गया और वर्त्तमान युग के तीन पाद भी वीत गये (सत्, त्रेता, द्वापर) और शुक्रवार से कलियुग का आरम्भ हुआ—गुरुवार को द्वापर समाप्त हुआ (महाराजा युधिष्ठिर ने राज्य किया) इस प्रकार आर्यभट्ट के मत से सृष्टि के आरम्भ से वर्त्तमान कलियुग पर्यन्त् १९८६१२०००० वर्ष वीते हैं (शाके ४२१ तक) आ-र्यभट्ट के मत से चारो युग (सत्, त्रेता द्वापर, कलि) बराबर हैं—अर्थात् चारो युगों की वर्ष संख्या न्यूनाधिक नहीं है । युग के चारों चरण बराबर हैं एवं इन के मत से मन्वन्तरों की सन्धि भीनहीं होती—इस लिये इनके मत से १ मन्वन्तर में ७२ युग होते हैं ॥ ३ ॥

शशिरा शयष्ठ चक्रं तेऽशकलायोजनानि यवञगुणाः ।
प्राणेनैति कलां भूः*खयुगांशे ग्रहजवो भवांशेऽर्कः ॥४॥

(*) प्राणेनैति कलांभूर्यदितर्हि कुतो व्रजेत् कमध्वानम् । आवर्त्तनमु-र्व्याश्चेन्न पतन्तिः समुच्छ्रयाः कस्मात् । ब्र० सि० अ० ११ (देखो भूमिका)

'शशिनश्चक्रं' भगणा. द्वादशगुणिता राशयः । शशिनो, युगभगणा द्वादशगुणिता युगराशयो भवन्ति । भगणाद् द्वादशांशो राशिरित्युक्तं भवति । ते राशयो यगुणास्त्रिंशद्गुणिता अंशा भवन्ति। राशेस्त्रिंशांशो भाग इत्युक्तं भवति । तेऽंशा 'वगुणाष्षष्टिगुणाः कला भवन्ति। अंशात् षष्ठ्यंशः कलेत्युक्तं भवति । ताः कला ञगुणा योजनानि भवन्ति । शशिनो युगभवाः कला द-शगुणिता आकाशकक्ष्यायोजनानि भवन्तीत्यर्थः । ब्रह्माण्डकटाहावच्छिन्नस्य सूर्यरश्मिव्याप्तस्याकाशमण्डलस्य परिधियोजनान्याकाशकक्ष्यायोजननीत्यु-च्यन्ते। खखषट्पद्मीषुखाश्विस्वराब्ध्यद्र्यब्धिभास्करा इत्याकाशकक्ष्यायोजना-नि ॥ प्राणेनैति कलां भम् । प्राणेनोच्छ्वासतुल्येन 'कालेन भं ज्योतिश्चक्रं कलामेति कलापरिमितं प्रदेशंप्रवहवायुवशात्पश्चिमाभिमुखं गच्छति । खख षड्भूयमतुल्या हि ज्योतिश्चक्रगताः कलाः । चक्रभ्रमणकालनिष्पन्नाः प्राणाश्चः तत्तुल्या इत्युक्तं भवति । अतोघटिकामण्डलगताः प्राणा राशिचक्रगताः कलाश्च क्षेत्रतस्तुल्या इति चोक्तं भवति॥ खयुगांशे ग्रहजवः । खमाकाशकक्ष्या। युगं ग्रहस्य भगणाः । आकाशकक्ष्यातो ग्रहभगणैराप्त ग्रहजवः । एकपरिवृत्तौ ग्रहस्य जवो गतिमानं योजनात्मकं भवति । ग्रहस्य कक्ष्यामण्डलपरिधियोज-नमित्यर्थः ॥ भवांशेऽर्कः । भस्य नक्षत्रमण्डलस्य कक्ष्याया वांशे षष्ट्यंशे अर्को भ्रमति । नक्षत्रकक्ष्यातष्षष्ट्यंशेन तुलितार्ककक्ष्येत्युक्तं भवति। अत्र नक्षत्रकक्ष्या विधीयते । अर्ककक्ष्याहि पूर्वविधिनैव सिद्धा । अर्ककक्ष्या षष्टिगुणिता नक्ष-त्रकक्ष्या भवतीत्युक्तं भवति ॥ पञ्चमेन योजनपरिमितिं भूम्यादर्योजनप्रमाणञ्च प्रदर्शयति ।

भाः-चन्द्रमा के भगण को १२ से गुणन करने पर "राशि" होगी अर्थात् चन्द्रमा के युग के भगण को १२ से गुणन कर राशि होगी । (भगण के १२ भाग को राशि कहते हैं) राशि को ३० से गुणन करनेपर "अंश" होंगे, (राशिका ३० वां भाग अंश होताहै) अंश को ६० से गुणन करने से कला होगी, (अंश के ६० वें भाग को कला कहते हैं) कला को १० से गुणन करने पर यो-जन सख्या होगी अर्थात् चन्द्रमा के १ युग के कला को १० से गुणन करने पर गुणनफल आकाश कक्षा का (योजन में) परिमाण होगा । इतनी दूर में सूर्य के किरणों का प्रसार होता है । एक 'प्राण, (श्वास) में पृथिवी की गति पूर्व से पश्चिम को एक कला होती है । आकाश कक्षा से ग्रहों के

भगण द्वारा ग्रह का गत्यात्मक योजन होता है। अर्थात् ग्रह की कक्षा मण्डल परिधि योजन होगा।

नक्षत्र कक्षा के ६० वें भाग में सूर्य (अपनी परिधि में) भ्रमण करता है अर्थात् नक्षत्र कक्षा से ६० वां अंश की बराबर सूर्य की कक्षा है। यहां नक्षत्रकक्षा कहने-से पूर्व सूत्र से सूर्यकक्षा ही सिद्ध है रविकक्षा को ६० से गुण करने से नक्षत्र कक्षा होगी ॥ ४ ॥

नृषि योजनं ञिला भूव्यासोऽर्केन्द्वोर्घ्रिञा गिण क मेरोः।
भृगुगुरुबुधशनिभौमाश्शशि ङञणनमांशकास्समार्कसमाः॥

नृषि योजनम्। नृ नरप्रमाणानां षि अष्टसहस्रं योजनं योजनस्य प्रमाणं भवति ॥ ञिला भूव्यासः। ञि सहस्रं ला पञ्चाशत्। एतानि भूमेर्व्यासप्रमाणयोजनानि ॥ अर्केन्द्वोर्घ्रिञा गिण। अर्कमण्डलस्य व्यासप्रमाणयोजनानिघ्रिञा इति। घि चत्वारि शतानि। रि चत्वारि सहस्राणि। ञ दश। इन्द्वोर्गिण इति। गि त्रिशतम्। ण पञ्चदश॥ क मेरोः। मेरोर्व्यासयोजनप्रमाणं क। एकमित्यर्थः ॥ भृग्वादीनां बिम्बयोजनानि क्रमाच्छशिनो बिम्बस्य योजनव्यासात् ङांशञांशणांशनांशमांशतुल्यानि। पञ्चांशदशांशपञ्चदशांशविंशांशपञ्चविंशांशतुल्यानीत्यर्थः ॥ शशिकक्ष्यासाधिता एते व्यासाः। अतोविष्कम्भार्द्धहताश्चन्द्रस्य योजनकर्णभक्ता लिप्ता भवन्ति। पुनरपि ता विष्कम्भार्धहतास्स्वस्वमन्दकर्णशीघ्रकर्णयोर्योगार्धहतास्स्फुटा भवन्ति। इत्युपदेशः। तथाच मयः *।

" त्रिघ्नतुः कर्णयुत्याप्तास्ते द्विघ्नास्त्रिज्यया हताः " ।

इति। अत्र चन्द्रस्य योजनकर्णश्चन्द्रस्य मध्ययोजनकर्णः ॥ समार्कसमाः। युगसमा युगार्कभगणसमा इत्यर्थः ॥ ग्रहाणां विषुवत उत्तरेण दक्षिणेन चापयानप्रमाणं पुरुषप्रमाणञ्च षष्ठेन सूत्रेणाह।

भाः—८००० पुरुष (हाथ का पुरुष) १ योजन होता है। इस योजन से १५०० योजन पृथिवी का व्यास है। सूर्य्य मण्डल का ४४१० योजन, चन्द्रमण्डल का व्यास ३१५ योजन, और मेरु (उत्तर या दक्षिण) का व्यास १ योजन है। और शुक्र, बृहस्पति, बुध, शनि, मङ्गल, इन का बिम्बव्यास चन्द्रमा

(*) सूर्यसिद्धान्ते ग्रहयुत्याधिकारे ॥ १४ ॥

है बिम्बव्यास के योजन संख्या से क्रम से ५ वां अंश, १० वां अंश १५, २०, १५, अंश, है। चन्द्रमा की कक्षा से ये व्यास सिद्ध होते हैं। यहां चन्द्रमा का योजन कर्ण से चन्द्रमा मध्ययोजन कर्ण जानना। युग में सूर्य के भगण के तुल्य जानना।॥ ५ ॥

भाऽपक्रमो ग्रहांशाश्शशिविक्षेपोऽपमण्डलात्कार्धम्।
शनिगुरुकुज खकगार्धं भृगुबुध ख सूचाङ्गुलो घहस्तोना ॥६॥

भाऽपक्रमो ग्रहांशाः। ग्रहाणां भ अंशाश्चतुर्विंशतिभागा अपक्रमः। परमापक्रम इत्यर्थः। पूर्वापरस्वस्तिकात्त्रिराश्यन्तरे घटिकामण्डलापक्रम मण्डलयोरन्तरालं चतुर्विंशतिभागतुल्यमित्यर्थः॥ अपमण्डलाच्छशिनः परमविक्षेपो कार्धं नवानामर्धं सार्धाश्चत्वारोऽंशाः॥ शनिगुरुकुज खकगार्धम्। शनेर्विक्षेपः ख द्वावंशौ। गुरोः क एकांशः। कुजस्य गार्धं त्रयाणामर्धं सार्धोऽंशः। भृगुबुधख। भृगुबुधयोर्विक्षेपः ख द्वावंशौ॥ स्वाङ्गुलो घहस्तो ना। पुरुषस्स्वाङ्गुलो घहस्तश्च। स नवतिः। च षट्। षण्णवत्यङ्गुलः पुरुषः। घहस्तश्चतुर्हस्तश्च पुरुषः। नृपियोजनमित्यादौ नरशब्देन षण्णवत्यङ्गुलप्रमाणमुदितमित्युक्तं भवति। तदेव चतुर्हस्तप्रमाणं भवति। चतुर्विंशत्यङ्गुलैरेको हस्तो भवतीति चोक्तं भवति। अङ्गुलस्य परिमाणानुपदेशाल्लोकसिद्धमेवाङ्गुलं गृह्यते। उक्तञ्च तत्परिमाणं तन्त्रान्तरे।(लीलावत्याम्)

"यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यैर्हस्तोऽङ्गुलैष्षड्गुणितैश्चतुर्भिः।
हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशस्सहस्रद्वितयेन तेषाम्" ॥

इति॥ इह विक्षेपकथने शन्यादीनां भृगुबुधयोश्च पृथग्ग्रहणं कृतम्। तेन तेषां त्रयोश्च विक्षेपानयने प्रकारभेदोऽस्तीति सूचितम्॥ कुजादीनां पञ्चानां पातभागान् सूर्ययुतानां तेषां मन्दोच्चांशांश्च सप्तमेन सूत्रेणाह।

भाः—ग्रहों का परमाक्रम २४ अंश है। अर्थात् 'पूर्वस्वस्तिक' और 'अपरस्वस्तिक' ३ राशि के अन्तर पर हैं "घटिकामण्डल" और "अपक्रममण्डल" के बीच का भाग २४ अंश है। "अपक्रममण्डल" से चन्द्रमा का "परमविक्षेप" $4\frac{1}{2}$ अंश है, शनि का विक्षेप २ अंश, गुरु का १ अंश, मङ्गल का $1\frac{1}{2}$ अंश शुक्र और बुध का विक्षेप २ अंश है। ४ हाथ का पुरुष होता है। और २४, अङ्गुल का १ हाथ एवं ९६ अङ्गुल का पुरुष होता है। ८ पेटे से पेटे मिले

हुए यव का १ अङ्गुल २४ अङ्गुल का १ हाथ ४ हाथ का १ दंड और २००८ दंड का १ कोश होता है ॥ ६ ॥

बुधभृगुकुजगुरुशनि नवरषहा गत्वांशकान्प्रथमपाताः । सवितुरमीषाञ्च तथा द्वा ञखि सा हुदा हुल्य खिच्य मन्दो- च्चम् ॥ ७ ॥

बुधस्य पातांशाः न विंशतिः । भृगोः व षष्टिः। कुजस्य र चत्वारिंशत् ।गुरोःष अशीतिः। शनेःह शतम् ।गत्वांशकान्प्रथमपाताः। उक्तानेतानेवांशकान् मेषादितो गत्वा व्यवस्थिता बुधादीनां प्रथम पातास्स्युःप्रथमशब्देन द्वितीयोऽपि पातोऽस्तीति सूचितम् । स च प्रथमपाताच्चक्रार्धान्तरे स्थितस्स्यात् । विक्षेप- मण्डलापमण्डलयोस्संपातस्थानं पातशब्देनोच्यते । तद्धुभयत्र भवति । गत्वेति वचनात्तेषां पातानां गतिरभिप्रेता । गतिश्च विलोमा। पातविलोमा इत्यनेन पातानां विलोमगत्वमुक्तम् । अस्मिन्काले पातानां स्थितिरेवमित्युक्तं भव- ति ॥ सवितुर्मन्दोच्चं तथा द्वा । दा अष्टादश । वा षष्टिः । अष्टसप्ततिभा- गान् तथा मेषादितो गत्वा स्थितं सवितुर्मन्दोच्चमित्यर्थः । अमीषामुक्तानां बुधादीनां मन्दोच्चानि ञखिरित्येवमादिभिरुक्तानि। बुधस्य मन्दोच्चं ञखि दशाधिकशतद्वयभागाः । भृगोः सा नवतिभागाः । कुजस्य हुदा । हा शतं दा अष्टादश । अष्टादशाधिकशतभागाः । गुरोः हुल्य । ह शतं ल पञ्चाशत् य त्रिंशत् । अशीत्यधिकशतभागाः । शनेः खिच्य। खि शतद्वयं च षट् य त्रिंशत्। षट्त्रिंशदुत्तरशतद्वयभागाः। गत्वेतिवचनादेषामपि गतिरभिहिता । गतिश्चा- नुलोमा चन्द्रोच्चवत् । अस्मिन्काल एव मन्दोच्चस्थितिरित्युक्तं भवति । पातोच्चानां बहुना कालेनैवाल्पोऽपि गतिविशेषस्संभवतीति मत्वा तेषां गतिरिहानभिहिता । उक्ताश्शास्त्रान्तरे (सूर्यसिद्धान्ते मध्याधिकारे ४१) तेषां कल्पभगणाः—

"प्राग्गतेस्सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः ।
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः ॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणासवः ।
गोऽग्नयश्शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः ॥
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः ।

कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य त्रिखाङ्काश्च गुरोस्तथा ॥

शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः „ ।

इति । गुरोरिति दैत्यगुरोरुक्तम् + । अस्मिन्पक्षे कलेः प्रागतीता ग्रहगतिविषयाः कल्पाब्दा लिख्यन्ते–

"खखखाभ्राहिनागषुवाणाङ्काः कलेस्समाः ।

प्राङ्निर्दिष्टा ग्रहाणान्तु चारारम्भास्ततोऽध्वगाः" ॥

इति । अस्मिन्पक्षे कुदिवसा अष्टाद्यहिखरेन्द्रगोऽद्र्यङ्कतिथयः । भटप्रकाशिकायामुच्चपातानां गतिरन्यथा प्रदर्शिता–

'खाकाशाष्टकृतद्विद्विव्योमेष्वद्रीषुवह्नयः ।

युगं बुधादिपातानां विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥

एकद्वित्रिचतुष्पञ्च भगणाः परिकीर्तिताः ।

सौम्यारशुक्रजीवार्कपातानां क्रमशो युगे" *

एतैस्त्रैराशिकाद्यथोक्तपातसिद्धिः । इति । युगमत्र वर्षात्मकम् । एभिस्सिद्धानां पातानामुक्ता अंशा एव भवन्ति नतु कतिचिद्भगणाः । तेऽंशाः क्रगता एव भवन्ति नतु विलोमगाः । तथा सूर्यबुधादीनाञ्च मन्दोच्चयुगं तद्गणाश्च प्रदर्शिताः।–

"रव्युच्चस्य रसैकाङ्कगिर्यष्टिनवशङ्कराः ।

सहस्रघ्ना युगं प्रोक्तं भगणाश्च त्रयोदश ॥

दन्तवस्वश्विरामाग्निवसुरामयमा युगम् ।

बुधोच्चस्य शतघ्नास्ते सप्तात्र भगणास्स्मृताः ॥

खखाब्धिवेदपञ्चाष्टिवेदनन्दाद्रयो युगम् ।

कवेस्सूरेस्तदर्धं स्यादेकस्तस्मिन् गणस्तयोः ।

इति । सौरकुजयोस्तु तत्प्रकरणे ग्रन्थे पाठो दृश्यते । तयोरेवं पाठः कार्यः

"व्योमाम्बरशून्यकृताब्धिरुद्रशरवसुमतीषुशशितुल्यम् ।

+नैवं–भृगोरिति पाठस्य पुस्तकान्तरे दृष्टत्वाद्गुरोरिति पाठः प्रामादिक इत्यनुमेयम् ।

* प्रकाशिकापुस्तके शतघ्न स्यात् इति पाठो दृश्यते ॥

† प्रकाशिकापुस्तके 'एकस्तद्भगणास्तयोः । इति दृश्यते ॥

असितोच्चयुगं कौजं द्वि णां भगणा, इहेषवस्तु तयोः" ॥ +

इति । अत्रापि पठितभागा एव लभ्यन्ते नतु भगणाः । अतएवं प्रतीयते केनचिद्बुद्धिमता स्वबुद्धया परिकल्प्यैवं लिखितमिति । अस्मिन्पक्षे कलेः प्रागतीतास्समा लिख्य ते ।

" खखखाभ्रकषगनागगोचन्द्राः प्राक्कलेस्समाः" ।

इति ॥ अष्टमेन सूत्रेण शशिनश्च पूर्वसूत्रोदितसूर्यबुधभृगुकुजगुरुशनीनाञ्च मन्दवृत्तानि शनिगुरुकुजभृगुबुधानां शीघ्रवृत्तानि चाह ।

भा०:-बुध का पात अंश २०, शुक्र का ६०, मङ्गल का ४०, वृहस्पति का ८०, शनि का १०० ये प्रथम पात हैं । ये उक्त पात अंश मेषादि राशि से चल कर बुध आदि के व्यवस्थित प्रात होते हैं। यहां प्रथम शब्द से द्वितीयपात का भी होना सूचित होता है । और वह प्रथमपात से चक्रार्द्धान्तर में स्थित है । "विक्षेप मण्डल" और "अपमण्डल" के सम्पात स्थान को "पात" कहते हैं। वेही दोनों यहां होते हैं । सूर्य का मन्दोच्च ७८ अंश, मेष आदि से चल कर स्थित होता है। बुध का मन्दोच्च २१० अंश, शुक्र का ९० भाग, मङ्गल का ११८ गुरु का १८० और शनि का २३६ भाग हैं ॥ ७ ॥

कार्धानि मन्दवृत्तं शशिनश्छ ग छ घ ढ छ क यथोक्तेभ्यः । क गृ ड ग्ल कॢ दृ ड तथा शनिगुरुकुजभृगुबुधोच्चशीघ्रेभ्यः ॥८

कस्य नवानामर्धं कार्धानि । अर्धपञ्चमैरपवर्तितानि वृत्तानीहोच्यन्त इत्यर्थ । शशिनो मन्दवृत्तं छ सप्त । यथोक्तेभ्यः सूर्यबुधादिभ्यस्सिद्धानि वृत्तानि गादीनीत्यर्थः । ग्रहाणाञ्चांशाद्धि वृत्तपरिमितिः कल्प्यते । अतो ग्रहेभ्यं वृत्तानि भवन्ति । तत्र सूर्यस्य मन्दवृत्तं ग त्रीणि । मन्दवृत्तमेव, शशिसूर्ययं र्भवतीति । बुधस्य छ सप्त । भृगोः घ चत्वारि । कुजस्य ढ चतुर्दश । गुरो छ सप्त । शनेः क नव ॥ शनिगुरुकुजभृगुबुधोच्चशीघ्रेभ्यः । शीघ्रोच्चेभ्यः शीघ्रोच्चनिमित्तशीघ्रगतिवशाज्जातानि वृत्तानि कादीनि । शनेः क नव । गुरोः गृड । गत्रीणि । ड त्रयोदश । षोडशेत्यर्थः । कुजस्य ग्ल । ग त्रीणि । ल पञ्चाशत् । त्रिपञ्चाशदित्यर्थः । भृगोः कॢ । क नव । ल पञ्चाशत् । एकोनषष्टिरित्यर्थः । बुधस्य दृड । द अष्टादश । ड त्रयोदश । एकत्रिंशदित्यर्थः ।

+ प्रकाशिकापुस्तके "रुद्रशरशैलवसुमुनीन्दु समाः । इति पाठः । अरघ्न । भगणा नवेषवस्तु तयोः । इति लिखितम्--

अत्र मन्दशीघ्रवृत्तयोः क्रमभेदस्स्यात् तेन मन्दस्फुटशीघ्रस्फुटयोन्योन्यभेदस्सूचितः। यथा शीघ्रभुजाफलस्यकर्णसाध्यत्वं मन्दभुजाफलस्य तदभावश्च। अथवा मन्दकर्णतत्साधनानामविशेषकरणं शीघ्रकर्णतत्साधनानां तदभावश्चेति ॥ एवमोजपदे वृत्तानि प्रदर्श्य युग्मे पदे वृत्तानि भूवाय्वोः कक्ष्याप्रमाणञ्च नवम सूत्रेणाह।

भाः—चन्द्रमाकामन्दवृत्त७है(यहां४ $\frac{१}{२}$ - हैपरन्तु ५ $\frac{१}{२}$ से अपवर्तित वृत्त कहा जाता है)पूर्वोक्त सूत्र पठित सूर्य्य बुधादि से.सिद्धवृत्त ग आदि है ग्रहों के अंश ही से वृत्तपरिमित कल्पना की जाती है—इस लिये ग्रहों से वृत्त होते हैं। सूर्य्य का मन्दवृत्त ३, सूर्य और चन्द्रमा का मन्द ही वृत्त होता है। बुध का ७, शुक्र का ४, मङ्गल का १४, गुरु का ७, शनि का ९, शीघ्रोच्चगते वशतः उत्पन्न वृत्त शनि का ९, गुरु का १६, मङ्गल का ५३, शुक्र का ५९, और बुध का ३१, होता है ॥ ८ ॥

मन्दात् ङ ख द ज डा वक्रिणां द्वितीये पदे चतुर्थे च।
जाणक्नक्ल क्नोच्चाच्छीघ्रात् गियिङश कुवायुकक्ष्यान्त्या॥९॥

वक्रिणां पूर्वसूत्रोदितानां बुधभृगुकुजगुरुशनीनां द्वितीये पदे चतुर्थे पदेच मन्दात् मन्दगतिवशाज्जातानि मन्दवृत्तानि ङादीनि। बुधस्य ङ पञ्च। भृगोः ख द्वे। कुजस्य द अष्टादश। गुरोः ज अष्टौ। शनेः डा त्रयोदश॥ पूर्वोक्तानां शनिगुरुकुजभृगुबुधानां शीघ्रादुच्चाच्छीघ्रोच्चगतिवशाज्जातानि शीघ्रवृत्तानि जादीनि। तानि च द्वितीयचतुर्थपदयोरुच्यन्ते। शनेः जा अष्टौ। गुरोः ण पञ्चदश। कुजस्य क्न। क एकम्। न पञ्चाशत्। एकपञ्चाशत्। शुक्रस्य क्ल। क्ल सप्त। ल पञ्चाशत्। सप्तपञ्चाशत्। बुधस्य क्न। क नव। न विंशतिः। एकोनत्रिंशत्। अत्र द्वितीयचतुर्थपदोपदेशात्पूर्वोक्तानि प्रथमतृतीययोरिति चोक्तं भवति॥ कुवायोर्भूसंबन्धिनो वायोरनियतगतेरन्त्या कक्ष्या पर्यन्तभवा कक्ष्या गियिङश इति। गि शतत्रयम्। यि सहस्रत्रयम्। ङ पञ्च। श सप्ततिः। अत ऊर्ध्वं प्रवहोनाम वायुर्नियतगतिस्सदा भवति येन ज्योतिषचक्रमिदमपराभिमुखं भ्रमति॥ दशमसूत्रेण कालक्रियागोलोपयोगीनि परिधीन्याह॥

भाः-वक्री बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु और शनि का युग्म(सम)पद अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पद में मन्दगति वशतः मन्दवृत्त इस प्रकार होते हैं:-बुध के ५, शुक्र के २, मङ्गल के १८ बृहस्पति के ८, शनि का १३, पूर्वोक्त शनि, गुरु, कुज, शुक्र, बुध, के शीघ्रोच्चगति वशतः शीघ्रवृत्त होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ पद में शनि के ८, गुरु के ११, मङ्गल के ५१, शुक्र के ५७, बुध के २९, भूवायु* ३;७५ पर्य्यन्त चलता है। इस के ऊपर प्रवह वायु रहता है ॥९॥

मखि भखि फखि धखि णखि ञखि ङखि हस्क स्वकि किष्ग श्घकि किघ्व॥घ्लकि किग्र हक्य धाहा स्त स्ग श्क ङ्व ल्क प्त फ छ कलार्धज्याः ॥ १० ॥ ॥

कलार्धज्याः कलात्मिका अर्धज्या इहोक्ता इत्यर्थः। समस्तज्या अर्धज्येति द्विविधा हि जीवा। चापाकारस्य वृत्तपरिधिभागस्यैकाग्रादपराग्रान्तगता रेखासमस्तज्येत्युच्यते। तदर्धमर्धज्येत्युच्यते। गोलकालक्रिययोरर्धज्यैव हि प्रायेण व्यवहारः। तस्मादिहार्धज्याप्रदर्शनं क्रियते। चतुर्विंशतिजीवा इह पठिताः अतो गोलपादस्य चतुर्विंशतिभागं चापं प्रकल्प्येह जीवाः कल्पिता इति प्रदर्शितं भवति। आद्यजीवा मखि इति। पञ्चविंशत्यधिकशतद्वयम्। भखि चतुर्विंशत्यधिकशतद्वयम्। एवमन्याश्च वेद्या। अष्टमीहस्क इति। नवाङ्काः। स्वकि चन्द्राङ्काः। किष्ग त्रिवसुचन्द्राः। श्घकि वेदाद्रिमेकाः किघ्व वेदषडङ्काः। घ्लकि वेदेत्रिन्दवः। किग्र त्रिमनवः। हक्य एकाग्निचन्द्राः धाहा नवरुद्राः। स्त षड्दश। स्ग त्र्यङ्काः। श्क नवाद्रयः। ङ्व पञ्चरसाः ल्क एकेषव। प्त सप्ताग्नयः। फ द्वयश्विनः। छ सप्त॥ अत्रैकचापोत्थजीवया रहिता द्वितीयज्या। चापत्रयोत्थजीवा चापद्वयोत्थजीवया रहित तृतीयज्या। एवं परा अपि ज्ञेयाः। यद्यप्यर्धज्या एता युक्तितस्साध्यास्तथापि तासां बहुषु साधनत्वादिहोपदेशः कृत इति बोद्धव्यम्॥ दशगीतिकासूत्रपरिज्ञानस्य फलमाह।

---

* पृथिवी से ऊपर सात प्रकार के वायु हैं:-आवह, प्रवह, उद्वह, संवह सुवह, परिवह और परावह। इसी प्रकार ऊपर २ के सात लोकों में सात २ प्रकार के वायु मिलकर ४९ प्रकार के वायु होते हैं। इसी को पुराणों में ९ कोटि (प्रकार) वायु हैं ऐसा लिखा है।

+ अस्मिन्सूत्रवृत्रभङ्ग उपलभ्यते अतः प्रकाशिकापाठो धहहव इत्यादिश्शोभनपाठ

१० वीं गीतिका का अर्थ नीचे लिखे चक्र द्वारा किया गया है।

ज्या-ज्ञापक चक्र।

ज्यासंख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
ज्यार्द्धसं०	२२५	२२४	२२२	२१९	२१५	२१०	२०५	१९९	१९१	१८३	१७४	१६२	१५४

ज्यासंख्या	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
ज्यार्द्धसं०	१४३	१३१	११९	१०६	९३	७९	६५	५१	३७	२२	७

दशगीतिकासूत्रमिदं भूग्रहचरितं भपञ्जरे ज्ञात्वा।
ग्रहभगणपरिभ्रमणं स याति भित्त्वा परं ब्रह्म ॥११॥

भूमेर्ग्रहाणाञ्च चरितं यस्मिन्दशगीतिकासूत्रे तद्दशगीतिकासूत्रम्। भपञ्जरे ज्ञात्वा। गोले ज्ञात्वा। भपञ्जरमध्ये भूस्तिष्ठति। चन्द्रादिमन्दान्ता ग्रहास्स्वगत्या प्राङ्मुखं चरन्तो ज्योतिश्चक्रगत्यापराभिमुखं भ्रमन्ति। तत उपरि स्वतोगतिहीनं नक्षत्रमण्डलमपराभिमुखं भ्रमति। इत्यादि ज्ञात्वेत्यर्थः। स पुरो गणितविदेवंविधं ग्रहादिचरितं ज्ञात्वा ग्रहनक्षत्राणां मार्गं भित्त्वा परं ब्रह्म गच्छति ॥

इति पारमेश्वरिकायां भटदीपिकायां गीतिकापादः प्रथमः।

भा०:-पृथिवी और ग्रहों का चरित जिस में वर्णित है। उस को राशिचक्र में यथावत् जान कर, नक्षत्र चक्र में पृथिवी अवस्थित है और चन्द्रमा मन्दग्रह आदि अपनी २ गति से पूर्व की ओर चलते हुए ज्योतिश्चक्र की गति से पराभिमुख भ्रमण करते हैं। इस के ऊपर अपनी गति से हीन नक्षत्रमण्डल भ्रमण करता सा दीख पड़ता है। गणितज्ञ गण इस प्रकार ग्रह आदिकों के चरित को जान कर पर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

इति आर्य्यभटीये गीतिका पादः समाप्तः ॥ १ ॥

एवं दशगीतिकात्मकेन प्रबन्धेनातीन्द्रियमर्थजातमुपदिश्येदानीं तन्मूलन्यायावसेयमर्थजातं प्रबन्धान्तरेण प्रदर्शयन्निष्टदेवतानमस्कारपूर्वं तदभिधानं प्रतिजानाति

ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥१॥

ब्रह्मभूमिग्रहनक्षत्रगणान्नमस्कृत्य कुसुमपुरे कुसुमपुराख्येऽस्मिन्देशे। अभ्यर्चितं ज्ञानं कुसुमपुरवासिभिः पूजितं ग्रहगतिज्ञानसाधनभूतं तन्त्रमार्यभटो निगदति।

कुसुमपुरेऽभ्यर्चितमित्यनेन ॥ कालक्रियागोलयोर्गणितगम्यत्वात्प्रथमं गणितपादं प्रतिपादयिष्यन्नादितो दशानां स्थानानां संज्ञास्संख्यालक्षणाञ्चाह ।

भा०ः– पृथिवी, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, और बृहस्पति, आदि धिष्ठित परब्रह्म को नमस्कार कर आर्यभट इस कुसुमपुर (पटना, विहार) के लोगों द्वारा समादृत आर्यभटीय नामक ग्रन्थ को कहते हैं ॥ १॥

एकं दश च शतञ्च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदञ्च वृन्दं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्यात् ॥२॥ *

इति । स्पष्टार्थः । अनुक्ता संख्या शास्त्रान्तरादवगन्तव्येति भावः ॥ समचतुरश्रफलयोर्वर्गसंज्ञां वर्गस्वरूपञ्चार्यार्धेनाह ।

दूसरी गीतिका का अर्थ नीचे लिखे प्रकार जानना ॥

एक १
दश १०
शत १००
सहस्र १०००
अयुत १००००
लक्ष १०००००
प्रयुत १००००००
कोटि १०००००००
अर्बुद १००००००००
अब्ज १०००००००००
खर्व १००००००००००
निखर्व १०००००००००००
महापद्म १००००००००००००
शङ्कु १०००००००००००००
जलधि १००००००००००००००
अन्त्य १०००००००००००००००
मध्य १००००००००००००००००
परार्द्ध १०००००००००००००००००

(*) इहार्यापूर्वार्धे वृत्तभङ्ग उपलभ्यते । एकं दशाथ तु शतं सहस्रमिति पाठः शुद्धप्रायो भवेत् ।

वर्गस्समचतुरश्रः * फलञ्च सदृशद्वयस्य संवर्गः ॥

यस्य चतुरश्रस्य क्षेत्रस्य चत्वारो बाहवः परस्परं समास्स्युः कर्णद्वयञ्च परस्परं समं भवेत् तत्क्षेत्रं समचतुरश्रमित्युच्यते । स क्षेत्रविशेषो वर्गसंज्ञितो भवति । फलञ्च । तस्मिन् क्षेत्रे यत्क्षेत्रफलं भवति तदपि वर्गसंज्ञितं भवति । क्षेत्रफलसमुदायस्य वर्गसंज्ञा भवति । अभीष्टक्षेत्रस्यान्तर्भागे हस्तमितैश्चतुर्भिर्बाहुभिर्निष्पन्नानि यानि समचतुरश्राणि तानि क्षेत्रफलानीत्युच्यन्ते । एवं त्रिकोणवृत्तादिक्षेत्रेष्वपि हस्तोन्मितचतुरश्रपरिकल्पनया जातानां चतुरश्रखण्डानां फलसंज्ञा भवतीति वेद्यम् । सदृशद्वयस्य संवर्गः । सदृशयोः परस्परतुल्ययोस्संख्ययोर्यस्संवर्गः परस्परहतिस्स वर्गसंज्ञो भवति । स्वस्य स्वसंख्यया हननं वर्गकर्मेत्युक्तं भवति ॥ उत्तरार्धेन घनमाह ।

भा०:—जिस "चतुर्भुज क्षेत्र" के चारो भुजा एवं दोनों कर्ण परस्पर समान हों, उसे "समचतुरस्र" क्षेत्र कहते हैं । ऐसे "समचतुरस्र" क्षेत्र का नाम "वर्गक्षेत्र" भी है । और इस के फल का नाम "वर्गक्षेत्रफल" होता है । समान दो संख्याओं के परस्पर गुणन को "संवर्ग" कहते हैं ॥ २, और आधी गीतिका का अर्थ हुआ ॥

सदृशत्रयसंवर्गो घनस्तथा द्वादशाश्रस्स्यात् ॥ ३ ॥

तुल्यसंख्यात्रयस्य संवर्गः परस्परहतिर्घनसंज्ञो भवति । स्वस्य स्वसंख्यया गुणितस्य पुनरपि स्वसंख्यया हननं घनकर्मेत्युक्तं भवति । तथा द्वादशाश्रक्षेत्रञ्च घनसंज्ञं भवति । एतदुक्तं भवति । हस्तोन्मितदैर्घ्यविस्तृतेस्समचतुरश्रस्य स्तम्भादेर्यथा मूले तिर्यगायतानि चत्वार्यश्राणि भवन्ति । तथाग्रे चत्वारि । अधऊर्ध्वगतानि चत्वारि । एवं द्वादशभिरश्रैर्युतं क्षेत्रञ्च घनसंज्ञं भवतीति । अत्र सदृशद्वयसंवर्गस्सदृशत्रयसंवर्ग इत्याभ्यामेव वर्गकर्म घनकर्म च प्रदर्शितम् । अस्माद्विधेर्न्यायतस्सिद्धं परैरुक्तं प्रक्रियान्तरं विलिख्यते* ।

"समद्विघातः कृतिरुच्यतेऽथ स्थाप्योऽन्त्यवर्गो द्विगुणान्त्यनिघ्नः ।

---

* अतरश्रिरितिपाठो वैदिकः शतपथब्राह्मणादिषु दृश्यते ज्यौतिषग्रन्थेषु नोपलभ्यते किन्तु चतुरस्त्रिरित्येव पाठो दृश्यते । यत्र यत्रास्मिन् ग्रन्थे—अस्त्र स्थाने "अश्र" पश्येत तत्र सर्वत्रायमेव हेतुर्ज्ञेयः ।

* तथा लीलावत्याम्

स्वस्वोपरिष्टाच्च, तथापरेऽङ्कास्त्यक्त्वान्त्यमुत्सार्य पुनश्च राशिम् ॥"
इति वर्गकर्म ।

"समात्रिघातश्च घनः प्रदिष्टः स्थाप्यो घनोऽन्त्यस्य ततोऽन्त्यवर्गः ।
आदित्रिनिघ्नस्त आदिवर्गस्त्र्यन्त्याहतोऽथादिघनश्च सर्वे ॥
स्थानान्तरत्वेन युता घनः स्यात् प्रकल्प्य तत्खण्डयुगं ततोऽन्यत् ।
एवं मुहुर्वर्गघनप्रसिद्ध्या आद्यङ्कतो वा विधिरेष कार्यः ॥

इति घनकर्म । अन्त्यानि तत्कालस्थापितघनस्य मूलादीन्यन्त्यस्थानानि । आदिस्तस्यादिभूतमेकमेव स्थानम् । खण्डयुगमादिखण्डमविन्यस्तं तथा विन्यस्तमन्त्यखण्डञ्च । अन्यत् अन्यत्र प्रकल्प्येत्यर्थः ॥ भिन्नवर्गभिन्नघनयोस्तु ।

"अंशकृतौ भक्तायां छेदजवर्गेण भिन्नवर्गफलम् ।
अंशस्य घनं विभजेच्छेदस्य घनेन घनफलं भिन्नम् ॥"

इत्याभ्यां वर्गफलघनफले कल्प्ये ॥ वर्गमूलमाह ।

समान तीन संख्याओं के परस्पर गुणन को "घन" कहते हैं एवं द्वादशास्त्र क्षेत्र (१२ कोण का) का नाम भी "घनक्षेत्र" है ॥ ३ ॥

भागं हरेदवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन ।
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम् ॥४॥

ओजस्थानानिवर्गसंज्ञितानि। युग्मस्थानान्यवर्गसंज्ञितानि। अन्त्याद्वर्गस्थानाद्यथालब्धं वर्गं विशोधयेत्। शुद्धस्य तस्य वर्गस्य मूलमेकत्र संस्थापयेत्। पुनस्तन्मूलं पृथक् संस्थाप्यपृथक्स्थेन तेन द्विगुणितेन मूलाख्येन फलेन शुद्धवर्गस्थानस्यादिभूतमवर्गस्थानंविभज्य लब्धफलस्य वर्गञ्च विहृतस्थानस्यादिभूताद्वर्गस्थानाद्विशोध्यपुनस्तत्फलं मूलाख्यं पूर्वस्थापितमूलफलस्यादित्वेन पङ्क्त्यांन्यसेत् । पुनस्तया मूलपङ्क्त्या पृथक्स्थया द्विगुणितया शुद्धवर्गस्थानस्यादिभूतमवर्गस्थानंविभज्य तत्र लब्धस्य फलस्य वर्गञ्च विहृतस्थानफलमवर्गस्थानस्यादिभूताद्वर्गस्थानाद्विशोध्यतत्फलमपि मूलपङ्क्तौ स्थापयेत्। पुनरप्येवंकुर्याद्यावत्स्थानावसानम्। तत्र दृष्टा मूलपङ्क्तिर्मूलमेव। सदा विभज्यम् । यदि तत्र फलं न भवेत् तदा शून्यं मूलपङ्क्तौ संस्थाप्य पुनरप्यदवर्गस्थानं विभजेदित्यर्थः। यदा यत्स्थानं ह्रियते तदा तस्यान्त्यस्थानानि तस्यावयवभूतानीतिकल्प्यम्।

लब्धं स्थानान्तरे तल्लब्धं स्थानान्तरत्वेन पङ्क्त्यां स्थाप्यमित्यर्थः ॥

घनमूलमाह ।

भा०-इकाई के स्थान से आरम्भ करके प्रत्येक दूसरे अङ्कके ऊपर एक विन्दु रक्खो, इस प्रकार पूरी राशि कई अंशों में बंट जावेगी, इन अंशों की संख्या से वर्ग मूल के अङ्कों की संख्या जानी जायगी। वांई ओर के पहिले अंश में से कौन सी सब से बड़ी संख्या का वर्ग घट सकता है, उसे निर्णय करो वही वर्गमूल का पहिला अङ्क होगा, उस को भाग की तरह दी हुई संख्या की दाहिनी ओर लिखो और उस के वर्ग को उसी वांई ओर के अंश में से घटाओ। फिर वाकी पर दूसरे अंश अर्थात् आगेके दो अङ्कों को उतारो। इस प्रकार जो दो राशि वनेगीं उन को "भाज्य" मानो और उस भाज्य के दाहिने के एक अङ्क को छोड़ कर उस में पहिली वर्गमूल संख्या के दूने का भाग दो और भागफल को उसी मूल की दाहिनी ओर "भाजक" की दाहिनी ओर लिखो। फिर उस भाजक को मूल के शेष अङ्क से गुणा करके गुणन फल को भाज्य में से घटाओ। फिर और और सब अंशों को उतार कर पहिले की तरह कार्य करो। उदाहरणः-

२२०९ का वर्गमूल बताओ।

```
    २२०९ ( ४७
    १६
    ----
८७) ६० ९
    ६० ९
    ----
```

यहां पहिला अंश २२ है। सब से बड़ी संख्या के वर्ग १६ को २२ में से घटा सकते हैं। इस लिये ४ ही वर्गमूल का पहिला अङ्क होगा। पहिले अंश २२ में से १६ घटाने से ६ शेष रहे। दूसरा अंश ०९ को ६ की दाहिनी ओर उतारने से ६०९ हुए। ६०९ के ९ को छोड़ देने से ६० रहे। ६० में मूल के अङ्क ४ के दूने अर्थात् ८ का भाग देने से भागफल ७ हुआ। ७ को ४ के दाहिनी ओर ८ के दाहिने लिखो। फिर ८७ को ७ से गुणा करके गुणन फल ६०९ में से घटाने से वाकी कुछ नहीं रहा; इस लिये ४७ इष्ट वर्गमूल हुआ ॥ ४ ॥

अघनाद्भजेद्द्वितीयात् त्रिगुणेन घनस्य मूलवर्गेण ।
वर्गस्त्रिपूर्वगुणितश्शोध्यः प्रथमाद्घनश्च घनात् ॥५॥

प्रथमस्थानं घनसंज्ञम् । द्वितीयतृतीये अघनसंज्ञे । चतुर्थं घनसंज्ञम् । पञ्चमषष्ठे अघनसंज्ञे । एवमन्यान्यपि स्थानान्युक्तक्रमाद्विद्यानि । वर्गावर्गविभागो घनविभागश्च युक्तिसिद्धत्वादिहाचार्येणानुपदिष्टः । अन्त्याद्घनस्थानाद्यथालब्धं घनं विशोधयेत् । पुनस्तस्य मूलमेकत्र संस्थाप्य पुनस्तद्घनमूलं वर्गीकृत्य त्रिभिश्च निहत्य तेन शुद्धघनस्थानस्यादिभूतयोरघनस्थानयोर्द्वितीयाद्वामगादघनस्थानात्फलं विभजेत् । द्वितीयमघनस्थानं विभजेदित्यर्थः । तत्र लब्धं फलं वर्गीकृत्य त्रिभिश्च निहत्य पूर्वस्थापितेन मूलफलेन च निहत्य विहृतस्थानस्यादिभूतात्प्रथमाख्यादघनस्थानाद्विशोध्य तस्य फलस्य घनञ्च शुद्धराशेरादिभूताद्घस्थानाद्विशोध्य पुनस्तत्फलं घनमूलाख्यं पूर्वस्थापिते घने मूलाख्यफलस्यादिस्थाने पङ्क्तिरूपेणस्थापयेत् । पुनर्मूलपङ्क्त्या पृथक्स्थया वर्गीकृतया त्रिभिश्च निहतया शुद्धघनस्यादिभूतमघनस्थानं विभज्य लब्धं फलं वर्गीकृत्य त्रिभिश्च निहत्य पूर्वस्थापितमूलपङ्क्त्या च निहत्य विहृतस्थानस्यादिभूतात्प्रथमाख्यादघनस्थानाद्विशोध्य फलस्य घनञ्च शुद्धस्थानस्यादिभूताद्घस्थानाद्विशोध्य तत्फलं घनमूलाख्यं पूर्वस्थापितघनपङ्क्तौ स्थापयेत् । पुनरप्येवं कुर्याद्यावत्स्थानावसानं । तत्रजाता घन पङ्क्तिर्घनमूलफलं भवति । भिन्नेषु तु । अंशघनमूलराशौ छनमूलं छेदमूलहृते । इत्यनेन वेद्यम् । तथा भिन्नवर्गमूले च त्रिगुणेन घनस्य मूलवर्गेण भजेदित्यनेन । एवं प्रथमं घनशोधनमभिहितं भवति । वर्गमूले च द्विगुणेन वर्गमूलेन हरेदित्यनेन प्रथमं वर्गशोधनं भवति । घनकर्म लौकिके गणित उपयुज्यते नतु कालक्रियागोलयोः ॥ त्रिभुजक्षेत्रस्य फलं पूर्वार्धेनाह ।

भा०—इकाई के स्थान से आरम्भ करके प्रत्येक तीसरे अङ्क के ऊपर एक एक विन्द रक्ख कर राशि को कई एक अंशों में बांट लो, यह अंशसंख्या घनमूल की अङ्कसंख्या होगी ।

बांई ओर के पहिले अंश में जिस बड़ी से बड़ी संख्या का घन घट सकता हो उस को भाग की रीति के अनुसार दी हुई राशि की दाहिनी ओर लिखो यही संख्या इष्ट घनमूल का पहिला अङ्क होगी पहिले अंश में से

मूलांश के घन को घटाओ और अन्तरफल पर पास वाले दूसरे अंश को
ारो और इसे "भाज्य" समझो ।

पुनः लब्ध मूलांश के वर्ग के तिगुने को "जांच भाजक" समझो। भाज्य
पिछले दो अङ्कों को छोड़कर उस में "जांच भाजक" का भाग देने से मूल
दूसरा अङ्क मिल जावेगा ।

मूल में जो दो अङ्क (या कई अङ्क) अभी मिले हैं, उन को ३ से गुणा
ो और गुणन फल को नये मूलाङ्क के (जो जांच भाजक द्वारा निश्चय हु-
ा है) बांई ओर रक्खो, फिर इस राशि को नये मूलाङ्क से गुणा करो और
ुणन फल को "जांच भाजक" के नीचे दो अंक दाहिनी ओर रक्खो और
न को जोड़ो, अब यही योगफल असल भाजक होगा ।

"असल भाजक" को उस के शेष अंक से गुणा करो और गुणन फल को
ाज्य में से घटाओ। फिर अन्तरफल पर पास वाले दूसरे अंश को उतारो इस
कार जब तक सब अंश उतार लिये न जांय, तब तक ऊपर लिखी हुई रीति
े अनुसार कार्य करोः—

उदाहरण—४२८७५ का घनमूल निकालो ।

$$\text{जांचभाजक } 3\times 3^{2} = 27 \qquad 42875\ (35$$

$$3^{3}$$

$$3\times 27$$

$$\text{असलभाजक } \frac{95\times 5 = 475}{3175} \qquad 15875$$

$$3175\times 5 = 15875$$

३५ इष्ट घनमूल हुआ । ॥ ५ ॥

त्रिभुजस्य फलशरीरं समदलकोटीभुजार्धसंवर्गः ॥

त्रिभुजस्य क्षेत्रस्य या समदलकोटी । लम्ब इत्यर्थः । त्रिभुजस्याधोगतो
ाो भूमिरित्युच्यते ऊर्ध्वकोणाद्भूम्यन्तं त्यलम्बसूत्रं स लम्ब इत्युच्यते । ल-
स्योभयपार्श्वगते ये त्रिभुजदले त्रिकोणरूपे तयोरयं लम्ब एक एव कोटि-
वति । तस्मात्समदलकोटीत्युच्यते । तस्याः कोट्या भुजा तत्पार्श्वगतो भू-
ाखण्डस्स्यात् । अतो भुजयोरर्धं भूम्यर्धं भवति । भूम्यर्धलम्बयोस्संवर्गस्त्रिभु-
क्षेत्रफलं भवति ॥ घनस्य त्रिभुजस्य फलमुत्तरार्धेनाह ।

भा०: त्रिभुजक्षेत्र के जो दो तुल्य दल (अर्द्धभाग) कोटी । अर्थात् लम्ब । त्रिभुज के अधोगत भुजा को भूमि (आधार) कहते हैं । ऊपर के कोण से आधार तक जो लम्ब सूत्र उसे „ लम्ब „ कहते हैं । आधार के अर्द्धभाग को लम्ब से गुणन करने पर—गुणनफल " त्रिभुज क्षेत्र ,, का फल होगा ॥ एवं आर्यागीतिका अर्थ हुआ ॥

ऊर्ध्वभुजातत्संवर्गार्धं स घनष्षडश्रिरिति ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वभुजा क्षेत्रमध्योच्छ्रायः । तदिति क्षेत्रफलम् । ऊर्ध्वभुजायाः क्षेत्रफलस्य च संवर्गार्धं यत् स घनः ।घनफलं भवति। स क्षेत्रविशेषष्षडश्रिश्च भवति षड्बाहुर्भवति । सर्वतस्त्रिकोणं क्षेत्रमित्यर्थः । लम्बावगतिस्तु त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तरगुणो भुवाहतो लब्ध्या द्विस्था भूरूनयुता दलिताबाधे तयोस्स्यातामू । स्वाबाधाभुजकृत्योरन्तरमूलं प्रजायते लम्ब इत्यनेन वेद्या युक्त्या च तत्सिध्यति । युक्तिस्तु लीलावतीव्याख्यायां प्रदर्शिता । लम्बतदर्धयोर्वर्गान्तरपदमत्रोर्ध्वबाहुर्भवति ॥ वृत्तक्षेत्रफलं पूर्वार्धेनाह ।

ऊर्द्ध्वभुजा (खेत के बीच का उच्छ्राय) और क्षेत्रफल का संवर्ग का जो अर्द्धभाग—वह 'घन' होता है । अर्थात् वह क्षेत्र "षडस्रि" या "षड्बाहु" होता है। अथवा यों समझो कि वह सब ओर से "त्रिकोण" होताहै ॥६।

समपरिणाहस्यार्धं विष्कम्भार्धहतमेव वृत्तफलम् ॥

समपरिणाहस्य समवृत्तक्षेत्रपरिधेरर्धं विष्कम्भार्धहतं वृत्तक्षेत्रफलं भवति । वृत्तक्षेत्रफलानयनेऽयमेव प्रकारस्सूक्ष्म इत्येवशब्देन प्रदर्शयति ॥ घनसमवृत्तक्षेत्रस्य फलमपरार्धेनाह ।

समवृत्त क्षेत्र के परिधि के आधे को व्यास के आधे भाग से गुणन करने पर गुणनफल वृत्तक्षेत्र का फल होगा॥६ एवं आधी गीति का का अर्थहै।

तन्निजमूलेन हतं घनगोलफलं निरवशेषम् ॥ ७

तत्समवृत्तक्षेत्रफलं निजमूलेन स्वकीयमूलेन हतं घनगोलफलं भवति । निरवशेषं स्फुटमित्यर्थः ॥ विषमचतुरश्रादीनामन्तःकर्णयोस्संपातादधलम्बकोर्ध्वाधरखण्डप्रमाणां क्षेत्रफलञ्चाह ।

और उक्त समवृत्त क्षेत्रफल को स्वकीय मूल से गुणन करने पर स्फुट घन गोल फल होगा ॥ ७ ॥

आयामगुणे पार्श्वे तद्योगहृते स्वपातरेखे ते ।
विस्तरयोगार्धगुणे ज्ञेयं क्षेत्रफलमायामे ८ ॥

आयामो लम्बः। तेन गुणिते पार्श्वे भूवदने। भूमिर्मुखञ्चेत्यर्थः। भूवदनाभ्यां पृथङ्निहते लम्बे भूवदनयोर्योगेन हृते ये लब्धे ते पातरेखे भवतः। कर्णयोस्संपाताद्भूम्यन्तो लम्बभागस्तथा कर्णयोस्संपातान्मुखान्तो लम्बभागश्चेत्यर्थः। तत्र भूमितो लब्धं, भूमिकर्णयोगयोरन्तरालं मुखतो लब्धं मुखकर्णयोगयोरन्तरालम्। आयामे लम्बे विस्तरयोगार्धेन भूमिमुखयोर्योगार्धेन गुणिते क्षेत्रफलं भवति। इति ज्ञेयम्। समलम्बक्षेत्रेऽयं विधिः। ननु विषमलम्बे। तत्र लम्बयोः कतमोऽत्र परिगृहीत इति सन्देहस्स्यात् उद्देशकेन यदि समलम्बो नोद्दिश्यते तदा तु समानलम्बस्य चतुर्भुजस्य मुखोनभूमिं परिकल्प्य भूमिं भुजौ भुजौ त्र्यस्रप्रदेऽवसाध्ये तस्यावधेर्लम्बमितिस्ततश्चाबाधयोना चतुरस्रभूमिः। तल्लम्बवर्गैक्यपदं श्रुतिस्स्यात्। समानलम्बे लघुदोःकुयोगान्मुखान्यदोस्संयुतिरल्पिका स्यात्। इत्यनेन समलम्बतत्कर्णतत्सम्भवा वेद्याः॥ उक्तानुक्तक्षेत्राणां सर्वेषां फलानयनं पूर्वार्धेनाह।

भा०—लम्ब से दोनों भुजाओं को गुणन करो, गुणन फल को आबाधा (खण्ड) के योग से भाग दो, तो भागफल स्वपातरेखा होगी। अर्थात् कर्णाश्रित उभय सम्पात रेखा होगी॥ उस पातरेखा को लम्ब रेखा से गुणन कर गुणन फल "आयाम क्षेत्र" का फल होगा॥ ८॥

सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य पार्श्वे फलं तदभ्यासः॥

उक्तानामनुक्तानाञ्च क्षेत्राणां पार्श्वे प्रसाध्य। आयामविस्तारात्मकौ बाहू प्रसाध्य। उपपत्त्या निश्चित्य। तयोरभ्यासः कर्तव्यः। तत् क्षेत्रफलं भवति। समचतुरस्रस्य तद्घनस्य च पार्श्वयोस्स्पष्टत्वान्न प्रसाधनम्। त्र्यस्रस्य लम्ब आयामः। कल्पितभूम्यर्धं विस्तारः। घनगोलेऽपि वृत्तफलस्य मूलमुच्छ्रायः। विषमचतुरस्रे समलम्बे लम्ब आयामः। भूवदनयोगार्धं विस्तारः। विषमचतुरस्रे विषमलम्बे एकं कर्णभूमिं प्रकल्प्य तत्पार्श्वगतयोस्त्रिकोणयोर्लम्बद्वयमानयेत्। तत्र लम्बद्वयैक्यमायामः कर्णाख्यभूम्यर्धं विस्तारः। एवं सर्वत्र स्वधिया विस्तारायामौ परिकल्प्यौ॥ कालक्रियागोलोपयोगरहितानां गणितानां प्रतिपादनं प्रासङ्गिकमिति वेद्यम्॥ समवृत्तपरिधौ व्यासार्धतुल्यज्याप्रदेशज्ञानमपरार्धेनाह॥

भा०—जिन क्षेत्रों का वर्णन यहां किया गया है वं जिन का वर्णन यहां नहीं हुआ है ऐसे सब क्षेत्रों के दोनों भुजाओं को उपपत्ति से निश्चय करे, दोनों का अभ्यास करना चाहिये, तब क्षेत्रों का फल ज्ञात हुआ करेगा॥

परिधेष्षड्भागज्या विष्कम्भार्धेन सा तुल्या॥ ९॥

परिधेष्षड्भागस्य राशिद्वयस्य या जीवा सा विष्कम्भार्धेन व्यासार्धेन तुल्या

भवति। राशिद्वयस्य समस्तजीवात्र जीवेत्युच्यते। न पठितार्धज्या। एकराशे पठितार्धज्या विष्कम्भार्धेन दलेन तुल्येत्यर्थः॥ त्रैराशिकेनेष्टवृत्तस्य परिधितं व्यासकल्पनार्थं व्यासतः परिधिकल्पनार्थञ्च प्रमाणफले दर्शयति॥

भा०—परिधि के छठे भाग के दो राशियों की जो जीवा (ज्या) वह व्यास के आधे की बराबर होती है। यहां जीवा से पूर्ण जीवा (पूर्णज्या) समझनी क्योंकि आचार्य्य ने यहां अर्द्धज्या को पढ़ा नहीं॥ ९॥

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः॥ १०॥

चतुरधिकं शतं यत्तदष्टगुणम्। सहस्राणां द्वाषष्टिश्च। एतदयुतद्वयविष्कम्भस्य वृत्तस्यासन्नः परिणाहः। न तु निःशेष इत्यर्थः। परिणाहः। परिधिः। वृत्तस्य परिणाहः। परिधिव्यासयोरेकस्यैव हि निःशेषता सम्भवति। इतरस्य सावयवता सम्भवत्येव। दस्रागन्यहिद्विषट्संख्यः परिणाहोऽत्र कीर्तितः। गीतिकायां या अर्धज्या उक्तास्तास्सर्वा अपि युक्तित एकराश्यर्धज्याविष्कम्भार्धयोर्ज्ञातयोस्सतोस्साध्यास्स्युः। तासां सिद्ध्यर्थमिह परिधिषड्भागस्य समस्तज्याप्रदर्शनं परिधिव्यासज्ञानसाधनभूतफलप्रमाणयोः प्रदर्शनञ्च कृतम्। तत्रैकराश्यर्धज्यायां वक्तव्यायां द्विराशिसमस्तज्याप्रदर्शनन्तु। क्वचित्समस्तज्यामानीयार्धीकृत्यार्धज्या साध्यत इति प्रदर्शनार्थं परिधितो विष्कम्भानयन एवं त्रैराशिकम्। यदि चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणामित्युदितपरिधेरयुतद्वयं विष्कम्भः। तदा चक्रकलापरिमितपरिधेः कियान्विष्कम्भ इति भचक्रस्य विष्कम्भलब्धिः। तदर्धमिह त्रिज्यालब्धिर्भवति। एवं विष्कम्भोऽपि युक्तितस्सिध्येत्। सा युक्तिर्महाभास्करीयव्याख्यायां सिद्धान्तदीपिकायां विस्तरेण प्रदर्शिता। एकराश्यानयने युक्तिस्त्विह प्रदर्श्यते

व्यासार्धार्धं नयेत्केन्द्रात् सौम्यप्राक्सूत्रयोर्द्विधा।
तदग्राभ्यां परिध्यन्तं सूत्रे प्राक्सौम्ययोर्नयेत्॥
प्रागायतं तयोः कोटिर्भुजान्यदिति कल्प्यते।
गोलपादं भवेत्ताभ्यां त्रिधा खण्डितमंशगम्॥
कोट्यग्रात्पूर्वसूत्रान्तं सौम्यान्तञ्च भुजाग्रतः।
द्वे रेखे बाहुकोटी ते कोटिबाह्वोस्तु पूर्वयोः॥
व्यासार्धार्धसमे ते स्तस्तयोः कृत्योर्द्वयोः पुनः।
निजोत्क्रमज्यावर्गेण युतयोर्यत्पदद्वयम्॥
समस्तज्याद्वयं तद्धि निजचापद्वयस्य तु।

समस्तज्ये च ते गोलपादस्याद्यन्तभागयोः ॥
दीर्घाल्पयोस्तु यो भेदो बाह्वोः कोट्योस्तथाच यः ।
तद्वर्गैक्यपदं मध्यभागस्य ज्या समस्तज्या ॥
समस्तज्यात्रयस्यात्रि साम्यात् खण्डत्रयं समम् ।
व्यासार्धार्धमिता तस्मादेकर्क्षज्येति निश्चितम् ॥

इति ॥ जीवापरिकल्पनायां युक्तिप्रकारं दर्शयति ।

भा०ः—दो अयुत (२०००) परिमित व्यास की आसन्न परिधि का परिमाण ६२८३२ है । अर्थात् १ः ३, १४१६ ये गुणोत्तर हुए। इसी प्रकार त्रैराशिक द्वारा इससे न्यूनाधिक परिमिति व्यास के आसन्न परिधि का परिमाण समझना चाहिये॥१०॥

समवृत्तपरिधिपादं छिन्द्यात्त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव ।
समाचापज्यार्धानि तु विष्कम्भार्धे यथेष्टानि ॥ ११ ॥

समवृत्तस्य परिधिपादं छिन्द्यात् । युक्तिपरिकल्पिताभी रेखाभिश्छिन्द्यादित्यर्थः । तत्र जातात्त्रिभुजात्क्षेत्रात्कानिचिज्ज्यार्धानि सिध्यन्ति। त्रिभुजस्याश्रवशात्सिध्यन्तीत्यर्थः । अन्यानि तत्र जाताच्चतुर्भुजात्क्षेत्रात्सिध्यन्ति । चतुर्भुजाश्रवशात्सिध्यन्तीत्यर्थः ॥ समचापज्यार्धानि । परस्परं समानामर्धचापानां ज्यार्धानीत्यर्थः । विष्कम्भार्धे सिद्धे सत्यन्यानि सिध्यन्तीत्यर्थः । यथेष्टानि । गीतिकासूक्तानां चतुर्विंशत्यर्धजीवानाम्मध्ये यानीष्टानि तानि सिध्यन्ति । सर्वाणि सिध्यन्तीत्यर्थः । एवं पिण्डज्यार्धानि सिध्यन्ति । तानि पूर्वपूर्वहीनानि मख्यादीनि भवन्ति । अत्रोच्यते ॥

वृत्तांशो धनुराकारस्समस्तधनुरुच्यते ।
तस्याग्रद्वयगा जीवा समस्तज्या च तस्य तु ॥
तस्या अर्धमिहार्धज्या तच्चापार्धञ्च तद्धनुः ।
दोःकोटिजीवे त्वर्धज्ये सदा तद्धनुषी तथा ॥
गतगन्तव्यभगौ हि दोःकोटी वृत्तपादके ।
तज्ज्ये दिक्सूत्रयुग्मान्ते चेष्टवृत्तांशकादतः ॥
अर्धज्याग्रात्परिध्यन्तं तदुत्क्रमगुणो भवेत् ।
दोःकोटयोस्कहीना त्रिजीवा स्यादितरोत्क्रमः ॥
अर्धज्योत्क्रमवर्गैक्यपदं तद्धनुषो भवेत् ।
समस्तज्या तदर्धं तु तच्चापार्धेऽर्धजीवका ॥
अर्धोत्क्रमसमस्ताभिर्ज्याभिस्त्र्यश्रं भवेदिह ।

दोःकोटिभ्यां व्यासदलखण्डाभ्याञ्च चतुर्भुजम् ॥
त्र्यस्रे समस्तजीवार्धं साध्यजीवेति कल्प्यते ।
चतुर्भुजे तु कोटिर्वा भुजा वा साध्यजीवका ॥
त्रिज्यादोःकृतिभेदस्य मूलं कोटिर्भुजा तथा ।
एतत्सर्वं विदित्वात्र जीवायुक्तिर्विचिन्त्यताम् ॥
राशित्रयमिते दोष्णि दोर्ज्या त्रिज्यासमा भवेत् ।
त्रिज्यैवोत्क्रमजीवापि तस्याः कोट्या ह्यभावतः ॥
अतस्त्रिगुणयोर्वर्गयोगमूलं समस्तज्या ।
जीवा त्रिराशिचापस्य त्र्यस्रं तत्र प्रजायते ॥
समस्तार्धोत्क्रमज्याभिस्समस्तज्यार्धमत्र तु ।
सार्धत्रयहोरर्धज्या पिण्डज्या द्वादशी च सा ॥
तया तदुत्क्रमेणापि समस्तज्या पुनर्भवेत् ।
ताभिस्त्र्यस्रं समस्तज्यादलं षष्टार्धजीवका ॥
तया कोटिश्चसाध्या स्याद्दोःकोट्योर्न्यस्तयोः पुनः ।
ताभ्यां दिक्सूत्रखण्डाभ्यामपि स्याच्चतुरस्रकम् ॥
अष्टादशी तत्र कोटिरित्थं सर्वत्र चिन्त्यताम् ।
चतुरस्रं त्रिकोणं वा जीवा चापि तदाश्रिता ॥
अष्टादशीषष्टिकाभ्यां समस्तज्यावशात्पुनः ।
नवमी च तृतीया च बाहुकोटिवशात्पुनः ॥
ताभ्यां पञ्चदशी चैकविंशी सप्तेति साधिताः ॥
व्यासार्धार्धं ह्यष्टमी ज्या तत्कोटिष्षोडशी भवेत् ॥
अष्टम्यास्तु समस्तज्याविधिना च चतुर्थिका ।
ततः कोटिवशाद्विंशी समस्तज्यावशात्ततः ॥
दशमी च ततो बाहुवशात्स्यात्तु चतुर्दशी ।
चतुर्दश्यास्समस्तज्यावशाद्भवति सप्तमी ॥
ततः कोटिवशात्सप्तदशी भूयोऽथ पञ्चमी ।
दशम्यास्तु समस्तज्यावशात्सिध्येत्पुनस्तथा ॥
एकोनविंशी पञ्चम्या बाहुरूपेण सिध्यति ।
द्वितीया च चतुर्थ्यास्स्यात्समस्तज्यावशात्ततः ॥

द्वाविंशी कोटिरूपेण समस्तज्यावशात्ततः ।
एकादशी ततो बाहुरूपेण स्यात्त्रयोदशी ॥
द्वितीयायाः समस्तज्यावशात्प्रथमजीवका ।
त्रयोविंशी ततः कोटिरूपेणैवञ्च षोडश ॥
त्रिज्यैव हि चतुर्विंशी पूर्वपूर्वानिता इमाः ।
खण्डज्या गीतिकोक्तास्स्युरित्युक्तं ह्यनयार्यया ॥

इति ॥ प्रथमखण्डज्यातो गीतिकोक्तखण्डज्यानामानयनोपायमाह ।

भा०ः—युक्ति से मानी हुई रेखा द्वारा भाग देवें तो त्रिभुज और चतुर्भुज वशतः कुछ अर्द्धज्या सिद्ध होंगी । परस्पर समान अर्द्ध चापों की अर्द्धज्या । और व्यासार्द्ध के सिद्ध होने पर शेष इष्टज्या सिद्ध होती जावेंगी ॥ ११ ॥

प्रथमाच्चापज्यार्धाद्यैरूनं खण्डितं द्वितीयार्धम् ।
तत्प्रथमज्यार्धांशैस्तैस्तैरूनानि शेषाणि ॥ १२ ॥

चापज्यार्धम् । चापस्य विहितार्धज्या हि मख्यादयः । खण्डितं द्वितीयार्धम् । द्वितीयमर्धज्याखण्डम् । प्रथमखण्डज्यास्थापनानन्तरं यदभीष्टजीवाखण्ड स्थाप्यते तद्द्वितीयमित्युच्यते । साध्यस्य पूर्वमित्यर्थः । प्रथमाच्चापज्यार्धाद्यै- रैस्संख्याविशेषैरूनं तत्तदभीष्टजीवाखण्डं द्वितीयाख्यम् । तैस्तैरूनानि । बहुसा- ध्यापेक्षया बहुषु स्थापितानि प्रथमखण्डज्यार्धानि कृत्वा पुनस्तत्प्रथमज्यार्धां शैः । तदिति । तच्छब्देनप्रथमादिरभीष्टज्यापूर्वान्तः खण्डज्यासमूह उच्यते । त- स्मादतीतखण्डज्यासमूहात्प्रथमज्यार्धेन लब्धैरंशैः फलाख्यैश्चोनानि कुर्यात् । एवंभूतानि शेषाणि भवन्ति । तत्तदुत्तरजीवाखण्डानीत्यर्थः । एतदुक्तम् । प्रथमं प्रथमज्याखण्डं संस्थाप्य तस्मात्साध्यस्य पूर्वजीवाखण्डं द्वितीयाख्यं विशोध्य शेषमेकत्र संस्थाप्य पुनस्साध्यखण्डज्यातः पूर्वखण्डज्यासमूहं प्रथमज्यया विभज्य लब्धं फलं पूर्वस्थापितशेषयुतं प्रथमज्यातश्शोधयेत् । तत्र शिष्टमुत्तरजीवाखण्डं भवति । उदाहरणम् । द्वितीयखण्डज्यातः पूर्वखण्डज्या मखि इति । अस्य न्यू- नताभावात्प्रथमफलं शून्यम् । पुनस्साध्यात्पूर्वखण्डज्यासमूहो मखि एव । त- स्मात्प्रथमज्यार्धेन लब्धमेकम् । तत् प्रथमज्याखण्डाद्विशोध्य शिष्टं द्वितीयज्या खण्डं भखि इति । पुनस्तृतीयात्साध्यज्याखण्डात्पूर्वज्याखण्डं भखि प्रथमादेके- नमेतत्पुनस्साध्यात्पूर्वखण्डज्यासमूहो मखिभखिभ्यां तुल्यस्तस्मात्प्रथमज्यार्धेन लब्धं द्वयं पूर्वशिष्टमेकञ्च मखेर्विशोध्य शिष्टं तृतीयज्याखण्डं फखि इति । एवम त्र साध्याः ॥ तैस्तैरितिवचनं बहुसाध्यजीवापेक्षया फलानां बहुत्वात् ।

ऊनानीतिवचनं बहुसाध्यापेक्षया प्रथमजीवाखण्डस्य बहुधा स्थापितत्वात् । शेषाणीतिवचनं साध्यानामुत्तरजीवाखण्डानां बहुत्वात् ॥ वृत्तादिपरिकल्पनाप्रकारमाह ।

भा०:—प्रथम चापज्यार्द्ध (संख्या) जो ऊन है। वह द्वितीयज्यार्द्ध होगा इसी प्रकार द्वितीय आदि जानना। जैसे :—२२५ प्रथमज्यार्द्ध, २२४ द्वितीय, तृतीय २२२ इत्यादि (प्रथम पा० गी० सू० १०) इसीप्रकार और भी जानो ॥१२॥

वृत्तं भ्रमेण साध्यं त्रिभुजञ्च चतुर्भुजञ्च कर्णाभ्याम् ॥
साध्या जलेन समभूरधऊर्ध्वं लम्बकेनैव ॥ १३ ॥

भ्रमेण कर्कटयन्त्रेण वृत्तं साध्यम् । एतदुक्तं भवति । ऋज्वीं काञ्चियष्टिं संपाद्य तस्या ऊर्ध्वभागे कण्ठप्रदेशे पाशेन दृढं बध्वा अधोगताग्रादपि कण्ठान्तं भित्त्वा शलाकाद्वयं कृत्वा तयोरग्रं तीक्ष्णाग्रं कुर्यात् । एवमधोमुखं कर्कटयन्त्रं भवति । पुनश्शलाकयोरन्तराले शलाकां निधाय कर्कटकं विवृतास्यं कुर्यात् । अन्तरालस्थशलाकाया ऊर्ध्वाधश्चलनात्कर्कटास्यमिष्टवृत्तव्यासार्धसमं कृत्वा एकशलाकाग्रं साध्यवृत्तमध्यप्रदेशे संस्थाप्यापरमग्रं वृत्तनेमिप्रदेशे संस्थाप्य कर्कटं भ्रमयेत् । तदभीष्टवृत्तं भवति । इति ॥ त्रिभुजक्षेत्रञ्च चतुर्भुजक्षेत्रञ्च कर्णाभ्यां साध्यम् । एतद्द्वयमपि स्वेनस्वेन कर्णेन साध्यमित्यर्थः । त्रिभुजेप्येको भुजः कर्ण इति कल्प्यते त्रिभुजद्वयोत्थचतुर्भुजे तस्य कर्णात्मकत्वात् तत्र प्रथमं कर्णतुल्यां शलाकां समभूमौ निधायान्यभुजद्वयतुल्ययोश्शलाकयोरेका शलाकां कर्णस्यैकाग्रे निधायापरां शलाकां कर्णस्येतराग्रे निधाय भुजाख्यशलाकाग्रयोस्सन्धिं कुर्यात् । तदभीष्टत्रिभुजं भवति । चतुर्भुजे ऽपि कर्णयोरेकं प्रथमं निधाय तस्यैकपार्श्वे भुजद्वयं त्रिभुजवन्निधायापरपार्श्वे चेतरभुजद्वयं त्रिभुजवन्निदध्यात् । इतरकर्णञ्च तस्मिन् कर्णस्थाने निदध्यात् । तदा कर्णद्वयाङ्कितं चतुर्भुजं भवति । अत्रैककर्णपरिग्रहेणेतरकर्णश्च नियमितो भवति ॥ साध्या जलेन समभूः । भूमेस्समत्वं जलेन साध्यम् । भूमेस्समविषमतापरिज्ञानं जलेन भवतीत्यर्थः । एतदुक्तं भवति । चतुरस्सूत्रेण भूमिं समतलां कृत्वा तत्रैकं वृत्तमालिख्य तद्बहिर्द्व्यङ्गुलान्तरितं त्र्यङ्गुलान्तरितं वा वृत्तान्तरञ्च विलिख्य परिध्योरन्तरालप्रदेशं समन्तात् खात्वा कुल्यां संपाद्य तां कुल्यामद्भिः पूरयेत् । तत्र परितो जलं भूसमं चेत् भूमिस्समा भवति । यत्र जलस्य नीचत्वं तत्र भूमेरुन्नतिस्स्यात् । यत्र जलस्योन्नतिस्तत्र भूमेर्नीचत्वं स्यादिति ॥ अधऊर्ध्वं लम्बकेनैव । गुरुद्रव्याबद्धाग्रमवलम्बितं सूत्रमव

लम्बक इत्युच्यते। तद्वशाच्छङ्क्वादेरधऊर्ध्वस्थितिर्ज्ञेयेत्यर्थः। शङ्कोर्हि मूलाग्रयो-रधऊर्ध्वावस्थान ऋजुस्थितिर्भवति॥ इष्टवृत्तप्रदर्शनाय तद्विष्कम्भार्धानयनमाह।

भा०:-भ्रम अर्थात् परकार (कम्पास-एक किस्मि के लोहे, पीतल, या काष्ठ का बना हुआ यन्त्र) से इष्ट वृत्त बनावे। परकार के एक नोक को इष्ट वृत्तके बीच में दृढ़कर रक्खे एवं दूसरे नोक को जितना बड़ा वृत्त क्षेत्र बनाना चाहे उतना फैलाकर चारो ओर घुमावे तो अभीष्ट वृत्त क्षेत्रबन जावेगा। इसी प्रकार त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्र को भी अपने २ कर्ण द्वारा बनावे। अर्थात् त्रिभुज की एक भुजा को कर्ण मान कर, इस कर्ण की बराबर एक शलाका जमीन पर रक्ख कर, अन्य दो भुजा की बराबर शलाका पर एक शलाके को कर्ण के आगे एवं दूसरी शलाके को कर्ण के दूसरी ओर रक्ख दोनों भुजा वाली शलाका के साथ मिलावे तो अभीष्ट त्रिभुज होगा। इसी प्रकार चतुर्भुज को भी जानना॥

यदि भूमि की समता जाननी हो कि यह भूमि बराबर है या ऊंची नीची है तो-इस को जल द्वारा ठीक करे। दृष्टि द्वारा भूमि को बराबर कर उस पर एक वृत्त लिखे उस के बाहर दो या तीन अंगुल अलग-दूसरा वृत्त बनावे और परिधि की बीच की जगह को बराबर रक्ख कर गड्हा करे और इस गड्हे को जल से भरे। यदि इस के ऊपर जल सब तरफ हो तो जानना कि पृथ्वी सम है। और यदि जल कम दीखे तो वहां जगह ऊंची होगी एवं जहां जल अ-धिक हो वहां जगह गहिरी होगी। लम्बक द्वारा पृथ्वी की ऊंचाई नीचाई का ज्ञान होता है॥ १३॥

शङ्कोः प्रमाणवर्गं छायावर्गेण संयुतं कृत्वा।
यत्तस्य वर्गमूलं विष्कम्भार्धं स्ववृत्तस्य॥ १४॥

वर्गमूलं मूलमेव। इष्टशङ्कोः प्रमाणवर्गं तच्छायावर्गेण युक्त्वा मूलीकुर्यात्। तन्मूलमिष्टकाले स्ववृत्ताख्यस्य मण्डलस्य विष्कम्भार्धं भवति। छायाग्रमध्यं श-ङ्कुशिरःप्रापि यन्मण्डलमूर्ध्वाधस्स्थितं तत्स्ववृत्तमित्युच्यते। यथा महाशङ्कु शिरःप्रापि व्यासार्धमण्डलं तद्वदिदमपि वेद्यम्॥ शङ्कोः प्रदीपोन्नतिवशाज्जात-च्छायानयनमाह।

भा०:-इष्ट शङ्कु के प्रमाणवर्ग को उसकी छाया वर्ग के साथ योग करे और इस का वर्गमूल निकाले तो यह मूल, इष्ट काल में " स्ववृत्त मण्डल " का व्या-सार्द्ध होगा। छाया के अग्रभाग से शङ्कु के शिर पर्यन्त जो वृत्त ऊपर नीचे को है उसे " स्ववृत्त " कहते हैं॥ १४॥

शङ्कुगुणं शङ्कुभुजाविवरं शङ्कुभुजयोर्विशेषहृतम्
यल्लब्धं सा छाया ज्ञेया शङ्कोस्स्वमूलाद्धि ॥ १५ ॥

शङ्कुरिष्टशङ्कुः। भुजा दीपयष्टिः। तयोर्विवरं अन्तरालभूमिः। तां शङ्कु शङ्कून्नतिमानेन निहत्य। शङ्कुभुजयोर्विशेषेण शङ्कून्नतिहीनदीपोन्नत्य वि भजेत्। तत्र लब्धं तस्य शङ्कोश्छाया भवति। स्वमूलादुत्पन्नच्छायामानं भवति उदाहरणम्।

द्वात्रिंशदङ्गुला दीपोन्नतिश्शङ्कुरिनाङ्गुलः।
दशाङ्गुला तद्विवरे भूमिश्छायात्र कीर्त्यताम् ॥

दीपोन्नतिः ३२। शङ्कून्नतिः १२। तयोरन्तरालभूः १०। शङ्कुभुजयोर्विशे शङ्कून्नतिहीनदीपोन्नतिः। २०। लब्धं छायामानम् ६ ॥ अत्र त्रैराशिकसिद्ध दीपाग्राच्छङ्कुमस्तकप्रापि कर्णसूत्रं भूम्यन्तं प्रसारयेत्। अत्र क्षेत्रद्वयं भवति तयोः प्रथमे दीपमूले शङ्कुमानं हित्वा य ऊर्ध्वभागश्शिष्यते स भागो भुजा भुजायाश्शङ्कुदीपान्तरालभू तुल्या कोटिः। तदा शङ्कुभुजायाः का कोटिरि शंकुमूलकर्णभूयोगयोरन्तरालकोटिसिद्धिः। सा हि तस्य शङ्कोश्छाया भवति। इति स्थानद्वयस्थापितसमशङ्कुद्वयच्छायाभ्यां छायाग्रयोरन्तरेण च दीपभुजानय दीपमूलच्छायाग्रयोरन्तरालानयनञ्चाह।

भा०:–इष्ट शंकु और भुज (दीपयष्टि) के अन्तर को अन्तराल (बीच की जगह भूमि कहते हैं। उस अन्तराल भूमि को शंकु की उन्नति मान से गुणा करे औ शंकु मान को भुजा में से घटाकर, फल जो विशेष बची हुई–दीपोन्नति–उस भाग देवे, भागफल छाया मान होगा। उदाहरण जैसे–दीप की उन्नति ३२, शं की उन्नति १२ और उस की अन्तराल भूमि १० है, तो छाया मान क्या होगा अब ३२ में से १२ को घटाया तो शेष २० रहा और १२×१०=१२० में २० क भाग दिया तो ६ मिला, यही छाया मान हुआ ॥ १५ ॥

छायागुणितं छायाग्रविवरमूनेन भाजिता कोटी।
शङ्कुगुणा कोटी सा छायाभक्ता भुजा भवति ॥ १६ ॥

दीपादेकसूत्रगतयोश्शङ्कोश्छाययोरग्रे यत्र भवतस्तत्स्थानयोरन्तराल तयोश्छाययोरेकया निहत्य। ऊनेन छायाह्रासेन छाययोरन्तरतुल्येन विभजेत् तत्र लब्धं कोटी भवति। या छाया गुणकारत्वेन परिगृहीता। तदग्रदीपमूल योरन्तरालभूमिरित्यर्थः। सा कोटी शंकुगुणिता गुणकारत्वेन परिगृहीतय

छायया भक्ता सती भुजा भवति । दीपोन्नतिरित्यर्थः । उदाहरणम् ।

दिग्भिष्षोडशभिस्तुल्ये छाये चाग्रान्तरं तयोः ।
अर्कतुल्यं दीपभुजा तत्कोटी च निगद्यताम् ॥

प्रथमच्छाया १० । द्वितीयच्छाया १६ । छायाग्रयोरन्तरालभूमिः १२ । अत्र प्रथमच्छायया लब्धा दीपकोटिः २० । दीपभुजा २४ । अथवा द्वितीयच्छायया लब्धा दीपकोटिः ३२ । दीपभुजा २४ । छायाग्रे हि छायाकर्णमण्डलस्य मध्यं भवति । अतश्छायाग्रात्कोटिकल्पना । दीपमूलस्थस्य शङ्कोर्हि छाया न भवति। ततो बाह्ये क्रमेण छायाविद्धिस्स्यात् । तत्रैवं त्रैराशिकम् । यदि छायान्तरतुल्येन छायाह्रासेन छायान्तरतुल्या भूमिर्लभ्यते तदेष्टछायातुल्येन छायाह्रासेन का भूमिरिति छायाग्रदीपमूलान्तरालभूमिलब्धिः । यदीष्टछायाख्यकोट्या स्वशङ्कुभुजा तदा दीपकोट्या का भुजेति दीपभुजालब्धिः । भुजाकोटिभ्यां कर्णानयनमार्याधेनाह ।

भा०ः—दीप से एक रेखा गत शङ्कु और छाया के अग्र का जहां मेल होता— उस के बीच की जगह को इन दोनों में से एक छाया को घटा कर और दोनों छाया के अन्तर तुल्य से भाग देवे, तो भागफल कोटी होगा । जो छाया गुणकार करके मानी गयी है उसके अग्र एवं दीप के मूल के बीच की भूमि वह कोटी है उसको शङ्कु-गणित से " गुणकार " करके मानी हुई छाया से भाग देने पर भागफल भुज होता है । अर्थात् दीपोन्नति होती है ॥ १६ ॥

यश्चैव भुजावर्गः कोटीवर्गश्च कर्णवर्गस्सः ।

भुजावर्गकोटिवर्गयोर्योगः कर्णवर्गस्स्यादित्यर्थः । शरे ज्ञाते जीवानयनमपरार्धेनाह ।

भा०ः—भुजा का वर्ग और कोटी का वर्ग का योग कर्णवर्ग होता है ॥

वृत्ते शरसंवर्गोऽर्धज्यावर्गस्स खलु धनुषोः ॥ १७ ॥

वृत्तक्षेत्र इष्टचापस्य या समस्तज्या तन्मध्यादुभयपार्श्वगतौ यौ शरौ तयोस्संवर्गो यस्स खलु धनुषोः पूर्वोदितेष्टचापखण्डयोरर्धज्यावर्गो भवति । इष्टोत्क्रमज्या प्रथमश्शरः । तदूनः समस्तविष्कम्भो द्वितीयश्शरः । कोटिकर्णयोगोऽत्राधिकश्शरः । तदन्तरमूनश्शरः । तदाहतिर्हि तयोर्वर्गान्तरम् । इतीह युक्तिः । वृत्तयोस्संवर्गे सति परिधिद्वययोगादेकस्मादितरपरिधिद्वययोगान्ता या जीवा तन्मध्यादुभयपार्श्वगतशरद्वयानयनमाह ।

भा०ः—वृत्तक्षेत्र में इष्टचाप की जो " पूर्णज्या " उस के बीच से जो उभय पार्श्वगत शर का संवर्ग है, वह धनुष का पूर्वोक्त इष्टचाप खण्ड का अर्धज्यावर्ग होगा ॥ १७ ॥

ग्रासोने द्वे वृत्ते ग्रासगुणे भाजयेत्पृथक्त्वेन ।
ग्रासोनयोगभक्ते संपातशरौ परस्परतः ॥ १८ ॥ *

अन्योऽन्यान्तर्गतयोर्वृत्तपरिधिभागयोर्मध्यगतमन्तरालं ग्रास इत्युच्यते । तेन ग्रासेन हीनं वृत्तद्वयम् । पृथक्त्वेन पृथगित्यर्थः । पृथग्ग्रासमानेन गुणितं कृत्वा पृथग्भाजयेत् । तत्रोक्तं हारमनुवादरूपेण प्रदर्शयन्फलं वदति ग्रासोनयोगभक्ते संपातशराविति । तत्र ग्रासोनयोर्वृत्तयोर्योगेन भक्ते राशिद्वये सति लब्धौ संपातशरौ भवतः । परिधियोगद्वयगतसमस्तजीवाया मध्य उभयपार्श्वगतौ शरावित्यर्थः । परस्परतः । अल्पवृत्ताल्लब्धोऽधिकवृत्तशरः । अधिकवृत्ताल्लब्धोऽल्पवृत्तशर इत्यर्थः । उदाहरणम् ।

"चत्वारिंशन्मितं वृत्तमन्यत्षोडशसम्मितम् ।
ग्रासभागश्चतुस्संख्यस्तयोर्वाच्यौ शरौ पृथक्" ॥

वृत्तमेकम् ४० । अन्यत् १६ । ग्रासः ४ लब्धो लघुवृत्तशरः ३ । बृहद्वृत्तशरः १ ॥ श्रेढीफलानयनमाह ।

भा०:–वृत्त और परिधि भाग के अन्तर्गत स्थान को "ग्रास" कहते हैं। उस ग्रास से हीन, दोनों वृत्तों को अलग ग्रास–मान से गुणा कर पृथक् भाग देवे। ग्रासोन एवं वृत्त योग द्वारा भाग देने पर दो सम्पात शर होंगे। छोटा वृत्त हो तो अधिक वृत्तशर होगा एवं बड़ा वृत्त हो, तो अल्प वृत्तशर होगा। उदाहरण जैसे—दो वृत्तों का मान ४० और ग्रास १६, और दोनों वृत्त का ग्रासोन ३६ । १२ ग्रास गुणा ३६ × ४=१४४, १२ × ४=४८ $\frac{१४४}{४८}$=३ $\frac{४८}{४८}$=१ ॥ १८ ॥

इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमध्यम् ।
इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम् ॥१९॥

बहुसूत्रार्थप्रदर्शकमेतत्सूत्रम् । अतो बहुधा योजना कार्या । तत्र मध्यफलसर्वफलानयने सपूर्वमित्येतदपनीय योज्यम् । इष्टपदमेकहीनं दलितमुत्तरेण च याख्येन गुणितं मुखेनादिधनेन युतं मध्यधनं भवति । तन्मध्यधनमिष्टपदगुणितं सर्वधनं भवति । अत्रैवं सूत्रम् । इष्टं व्येकं दलितं चयगुणितं मुखयुतञ्च मध्यधनम् । इष्टपदेन विनिघ्नं मध्यधनं भवति सर्वधनम् ।

* प्रकाशिकायां ग्रासोनयोगलब्धौ । इति पाठः । आचार्येण तु ०भक्ते-स्स्यातां० इति लिखितं स्यात् ।

इति ॥ अन्त्योपान्त्याद्यभीष्टपदधनानयने तु पूर्वमुत्तरगुणं समुखमित योजना। इष्टपदात्पूर्वमतीतानि पदानि पूर्वशब्देनोच्यन्ते। पूर्वपदसंख्या चयगुणिता मुखयुता इष्टधनं भवति। अत्रैवं सूत्रम् । पूर्वपदं चयगुणितं मुखसहितमिष्टधनं स्यात्.। इति । अवान्तरगतेष्टपदधनानयने तु मध्यमित्येतदुपनीय क्रमेण सूत्रमिष्टगुणितमिष्टधनमित्येवमन्तं योज्यम्। अवान्तरगतेष्टपदसंख्या व्येका दलिता इष्टपदेभ्यः पूर्वमतीतपदयुता चयगुणिता मुखसहिता अवान्तरगतेष्टपदसंख्यागुणिता अवान्तरेष्टपदेषु सर्वधनं भवति। अत्रैवं सूत्रम्। इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमिष्टगुणमवान्तरेष्टपदसंभूतं फलं भवति । इति। अत्रेष्टशब्देनावान्तरेष्टपद संख्योच्यते । उदाहरणम् ।

आदि पञ्च चयस्सप्त गच्छस्सप्तदशोच्यताम् ।
मध्योपान्ताष्टमादित्रि वद सर्वधनं पृथक् ॥

आदिधनम् ५। चयः ७। गच्छः १७। अत्र मध्यधनानयने इष्टम् १७। अस्मादिष्टं व्येकमित्यादिना सिद्धं मध्यधनम् ६१। एतदिष्टपदेन सप्तदशभिर्निहतम्१०३७ एतत्सर्वधनम्। उपान्त्यपदधनानयने इष्टम् १६। अस्मात्पूर्वपदम् १५ । चयगुणितं मुखसहितञ्च ११०। एतदुपान्त्ये षोडशपदे धनम्। अथाष्टमादिपदत्रयधनानयने इष्टम् ३ । एतद्व्येकं दलितम्१ । अस्मात्पूर्वपदैस्सप्तभिर्युतम् ८। उत्तरगुणं समुखञ्च ६१ । इष्टेनावान्तरपदैस्त्रिभिर्निहतम् १८३। एतदष्टमादिपदत्रये धनं भवति ॥ सर्वधनानयन उपायान्तरमार्योत्तरार्धेनाह । अथवाद्यन्तं पदार्धहतम् । इति । आदिधनान्त्यधनयोरैक्यं पदार्धहतं सर्वधनं भवति ॥ समुखमध्यमित्यत्र समुखं मध्यमिति द्रष्टव्यम्॥ यत्र मध्यपदाभावस्तत्र मध्यात्पूर्वापरयोरुत्पन्नधनयोर्योगार्धं मध्यधनं भवति ॥ गच्छानयनमाह ।

भा०:-अब "श्रेढीगणित" कहते हैं। अन्त्यधन लाने की रीति यह है कि-पद (गच्छ) में से एक घटावे और शेष अङ्क को " चय " (बढ़ती) धन से गुणा करे और गुणनफल में " आदिधन " को जोड़े तो " अन्त्यधन " होगा एवं इसी " अन्त्य धन " में आदि (मुख) धन को जोड़ कर योगफल को दलित (आधा) करने से " मध्यधन " होगा। और " मध्यधन " को पद से गुणा करने पर " सर्वधन " होगा ॥

उदाहरण-जैसे आदिधन ५ । चय ७ । गच्छ १७ । है, तो उक्त नियमानुसार १७ में से १ घटाया=१६×७=११२×५=११७ यह " अन्त्यधन „ हुआ । पुनः ११७+५ =१२२ को दलित किया तो ६१ हुआ। यह "मध्यधन" हुआ, और। ६१×१७=१०३७ यह " सर्वधन " हुआ ॥ १९ ॥

गच्छोऽष्टोत्तरगुणिताद्द्विगुणाद्युत्तरविशेषवर्गयुतात् ।
मूलं द्विगुणाद्यूनं स्वोत्तरभजितं सरूपार्धं ॥ २० ॥

लब्धधनमत्र विशेष्यम् । सर्वधनादष्टभिर्गुणितात् । पुनरुत्तरेण चयाख्येन च गुणितात् । पुनर्द्विगुणस्यादिधनस्य । उत्तरस्य चयाख्यस्य च यो विशेषस्तस्य वर्गेण युताद्यन्मूलं तस्माद्द्विगुणमादिधनं विशोध्य । उत्तरेण चयाख्येन विभजेत् । तत्र लब्धाद्रूपेणैकेन च युतादर्धं गच्छो भवति । पूर्वोदाहरणे लब्धधनम् १०३१ । एतदष्टभिरुत्तरेण सप्तसंख्येन च गुणितम् ५८०७२। द्विगुणमादिधनम् १०। उत्तरम् ७। अनयोर्विशेषस्य वर्गेण ९ युतम् ५८०८१। अस्माज्जातं मूलम् २४१ । द्विगुणेनादिधनेन १० ऊनम् २३१। एतत्स्वोत्तरेण चयेन ७ भक्तम् सरूपम् ३४ । दलितम् १७ । एष गच्छः ॥ एकाद्येकोत्तराङ्कानां संकलितधनानयनमाह ॥

भा:ट–सर्वधन को ८ से गुणा करे और गुणनफल को पुनः चय (७) से गुणा करे और आदिधन (५) को द्विगुणित कर उस में चय (७) के साथ परस्पर अन्तर करने पर जो शेष रहे उस का वर्ग करे; उसे उक्त " सर्वधन" में जोड़ कर उस का वर्गमूल निकाले, एवं इस वर्गमूल में द्विगुणित आदि धन (१०) को घटावे, शेष को चय से (७) भाग देवे और भागफल में रूप (१) जोड़े और योगफल को दलित (आधा) करे, यह आधी संख्या गच्छ का परिमाण होगा । उदाहरण जैसेः—

सर्वधन १०३७×८=८२९६ इस को ७ से गुणा किया तो ५८०७२ हुआ। और आदि धन ५×२=१० में से ७ घटाया तो शेष ३ रहा पुनः ३×३=९। ५८०७२+९=५८०८१ इस का वर्ग मूल २४१ में से १० घटाया तो २३१ रहे, इस में ७ का भाग दिया तो ३३+१=३४, इस को दलित किया तो १७ यह "गच्छ" सिद्ध हुआ ॥२०॥

एकोत्तराद्युपचितेर्गच्छाद्येकोत्तरत्रिसंवर्गः ।
षड्भक्तस्स चितिघनस्सैकपदघनो विमूलो वा ॥२१॥

एकमुत्तरमादिश्च यस्या उपचितेस्तस्या एकोत्तराद्युपचितेश्चितिघनः संकलितधनमत्र साध्यते। संकलितस्य संकलितधनमित्यर्थः। गच्छाद्येकोत्तरत्रिसंवर्गः। गच्छप्रथमराशिरेकोत्तर एकयुतो गच्छे द्वितीयो राशिः। द्वितीयोऽप्येकयुतस्तृतीयो राशिः । एषां गच्छाद्येकोत्तराणां त्रयाणां संवर्गष्षड्भक्तो यस्स चितिघनः संकलितधनं भवति । एकाद्येकोत्तराङ्कानां संकलितधनं भवति ॥ सैकपदघनो विमूलो वा । अथवा सैकामापदानां घनराशिस्सैकपदहीनष्षड्भक्तश्चितिघनो

वति। उदाहरणम्। पञ्च संकलिता ये स्युस्तेषां संकलितः प्रद्गच्छः ५। एष थमराशिः अयमेकोत्तरः ६। एष द्वितीयः। अयमप्येकोत्तरः ७। एष तृतीयः। षां त्रयाणां संवर्गः २१०। षड्भक्तः ३५। अयं चितिघनस्संकलितधनं भवति॥ थवा। सैकं पदम् ६। अस्य घनः २१६। एष स्वमूलेन सैकपदेन ६ हीनः २१०। ड्भक्तश्च ३५। एष चितिघनः॥ वर्गघनयोस्संकलितमाह।

प्रथम राशि को "गच्छ" कहते हैं। इस में १ जोड़ने से द्वितीय राशि होती है, द्वितीय राशि में १ जोड़ने से तीसरी राशि होती है और इन तीनों संवर्ग को छः से भाग देने पर "चितिघन संकलितधन" होता है॥ । प्रथम राशि में १ जोड़ कर इसी को घन कर, घनफल में पद को घटा र ६ से भाग देने पर चितिघन होता है।

उदाहरण जैसेः—पद (५) प्रथम राशि ५+१=६ यह द्वितीय राशि हुई पुनः +१=७ यह तृतीय राशि हुई, इन तीनों का संवर्ग ५×६×७=२१० हुआ इस में ६ का ाग देने पर ३५ रहा यह चितिघन संकलितघन हुआ। पुनः ५+१=६ पुनः ×६×६=२१६में ६ घटाया तो २१० बचा २१० ÷ ६=३५ यह चितिघन हुआ॥२१॥

सैकसगच्छपदानां क्रमात्त्रिसंवर्गितस्य षष्ठोऽशः।
वर्गचितिघनस्स भवेच्चितिवर्गो घनचितिघनश्च॥२२॥

पदमेव सर्वत्र गच्छशब्देनोच्यते। सैकपदं प्रथमराशिः। सैकं सगच्छञ्च पदं तृतीयः। एषां त्रयाणां क्रमेण हननं कुर्यात्। एवंभूतस्य त्रिसंवर्गितस्य त्रयाणां वर्गस्य यष्षष्ठोऽशः स वर्गचितिघनो भवेत्। वर्गाणां संकलितधनमित्यर्थः॥ चितिवर्गो घनचितिघनश्च। चितेरेकादिसंकलितस्य यो वर्गः स घनचितिघनः। कादिघनानां संकलितधनमित्यर्थः। उदाहरणम्॥ पञ्चानां वर्गघनयोः पृथक् कलितं वद।

अत्र सैकपदम् ६। इदमेव सगच्छम् ११। केवलपदम् ५। एषां त्रयाणां संवर्गः ३३०। षड्भक्तः ५५। इदं वर्गसंकलितम्॥ अथ घनसंकलिते गच्छः ५। एकाद्येको रकल्पनया इष्टं व्येकं दलितमित्यादिसूत्रेणानीतं संकलितधनम् १५। अस्य वर्गः २२५। एतत् पञ्चपर्यन्तानामेकादीनां घनैक्यम्॥ द्वयो राश्योस्संवर्गानयन उपायान्तरमाह॥

भा०:—केवल पद में एक जोड़ने से पहिली राशि, एक युक्त पद में १जोड़ने द्वितीय राशि, इन तीनों को क्रम से गुणा करे। इस प्रकार तीन बार गुणित का छठा भाग "वर्ग" चितिघन होता है। और एक आदि संकलित

का वर्ग "घन चिति घन" होता है--उदाहरण जैसे-एक सहित पद ५+१=६ गच्छ जोड़ा तो (५) ११ हुआ, केवल पद ५, इनका संवर्ग ६×११×५=३३० इसमें का भाग दिया तो ५५ वर्ग संकलित हुआ। गच्छ ५ संकलित घन १५×१५=२२ यह एक आदि पांच संख्याओं का घनैक्य हुआ ॥ २२ ॥

संपर्कस्य हि वर्गाद्विशोधयेदेव वर्गसंपर्कम् ।
यत्तस्य भवत्यर्धं विद्याद्गुणकारसंवर्गम् ॥ २३ ॥

संपर्कस्य गुणगुण्यात्मकयोर्द्वयो राश्योस्संयोगस्य वर्गात् तयोरेव राश्योर्व संपर्कं वर्गयोगं विशोधयेत् । तत्र यच्छिष्टं तस्य यदर्धं स गुणकारयोर्गुणगुण्या ख्ययो राश्योस्संवर्गो भवतीति विद्यात् । परस्परहनने हि द्वयोर्गुणकारत्वं गुण त्वञ्च कल्पयितुं शक्यम् । तस्मादुभौ गुणकारशब्दवाच्यौ । उदाहरणम् । "वदा हसिद्वयो राश्योः पञ्चसप्त समानयोः"

राश्योस्संपर्कः १२ । अस्य वर्गः १४४ । अस्माद्राश्योर्वर्गयोः २५ । ४९ । ए योर्योगं विशोध्य शिष्टम् ७० । अस्यार्धम् ३५ पञ्चसप्तमितराश्योस्संवर्गः ॥ राश्यं स्संवर्गे तदन्तरे च ज्ञाते राशिद्वयानयनमाह ।

भा०;--गुण और गुण्यात्मक राशियों के योग के वर्ग से उन्हीं दो राशि के वर्ग के योग में से वर्गयोग घटावे । उस में जो शेष रहे उसका आधा गु होगा एवं गुण्यात्मक राशि का संवर्ग होगा । उदाहरण जैसेः--दो राशियों व योग १२, इस का वर्ग १४४, इस से दोनों राशियों का वर्ग क्रम से २५+४९ इस का योग ७४ को १४४ में घटाया तो शेष ७० रहे, इस का आधा ३५ हुआ यह ५ और ७ राशि का संवर्ग हुआ ॥ २३ ॥

द्विकृतिगुणात्संवर्गाद् द्व्यन्तरवर्गेण संयुतान्मूलम् ।
अन्तरयुक्तं हीनं तद्गुणकारद्वयं दलितम् ॥ २४ ॥

राश्योस्संवर्गात् द्विकृत्या द्वयोः कृत्या चतुस्संख्यया गुणितात् द्व्यन्तरवर्ग द्वयो राश्योरन्तरस्य वर्गेण युताद्यन्मूलं तद्द्विधा विन्यस्य । एकस्माद्राश्यन्त विशोधयेत् । अन्यस्मिन्राश्योरन्तरं प्रक्षिपेत् । एवंकृतद्वयं दलितं गुणकारद्व भवति । उदाहरणम् ।

दशाहतिस्त्रयं भेदो राश्योस्तौ ब्रूहि बुद्धिमन् ।

अत्र राश्योस्संवर्गः १० । द्वयोः कृत्या गुणितः ४० । राश्यन्तरम् ३ । अ वर्गेण ९ युतम् ४९ । अस्मान्मूलम् ७ । अन्तरयुक्तं दलितम् ५ । अयमेको राशिः ॥ र

३ मूलराशिः ७। राश्योरन्तरेण हीनं दलितम् २। अयं द्वितीयराशिः॥ एव
दिविधौ यदुपायान्तरादि तत्सर्वं लीलावतीव्याख्याने प्रदर्शितम्। अतस्त-
ादवगन्तव्यम्। शतादेरेकस्मिन्मासादिकाले या वृद्धिस्तत्समाने धने तया
याद्त्ते सति तस्माद्धनादभीष्टकाले वृद्धिसहितमूलफलानयनमाह।

भा०:—दो राशियों के संवर्ग को ४ से गुणा करे और दोनों के अन्तर
वर्ग कर उक्त गुणनफल में जोड़े और उस का वर्गमूल निकाल कर दो अ-
। २ स्थानों में रक्खे एक में दोनों राशि के अन्तर को घटावे एवं दूसरे में
शि के अन्तर को जोड़े, तो दो गुणकारराशि होंगी॥ उदाहरण जैसेः—
×४=४०, १०–७=३, ३×३=९। ७×७=४९ इसका वर्गमूल ७+३=१० पुनः १० को
लेत किया तो ५ हुआ, यह एक राशि हुई। मूलराशि ७–३=४ इसको दलित
या तो २ रहा, यह द्वितीय राशि हुई। इसी प्रकार और भी जानो॥२४॥

मूलफलं सफलं कालमूलगुणमर्धमूलकृतियुक्तम्।
मूलं मूलार्धोनं कालहृतं स्यात्स्वमूलफलम्॥ २५॥

मूलस्य शतादेरेककाले वृद्धिरूपं यद्धनं दत्तं तद्धनं मूलफलाख्यम्। सफलम-
ाष्टकाले स्ववृद्धिसहितम्। कालेनाभीष्टकालेन गुणितम्। पुनर्मूलेन प्रमाणास्था-
स्थितेन शतादिना च गुणितम्। मूलस्य शतादेरर्धस्य कृत्या च युतं मूलीकुर्यात्।
न्मूलं मूलार्धेन शतादेर्मूलस्यार्धेनोनं कृत्वाभीष्टकालेन हरेत्। तत्र लब्धं स्व-
लस्य शतादेः फलं भवति। एतस्मिन् काले वृद्धिरित्यर्थः। तदेवदत्तमूलधनञ्च
वति। उदाहरणम्।

फलं शतस्य मासे यद्दत्तं तत्स्वफलान्तरम्।
मासषट्के षोडशकं जातं मूलफलं वद॥

अत्र मूलफलाख्यं दत्तधनं सफलम् १६। एतत् कालेन षट्संख्येनाभीष्टकालेन
ाणितम् ९६। मूलधनेन प्रमाणाख्येन शतेन च गुणितम् ९६००। अर्धमूलकृत्या मू-
धनस्य शतस्यार्धं यत् तत्कृत्या २५००। अनया युतम् १२१००। अस्य मूलम् ११०।
तन्मूलधनार्धेन ५०। अनेन हीनम् ६०। अभीष्टकालेन षट्केन भक्तम् १०। एत-
शसंख्यं शतस्य मासे फलं भवति। दत्तधनञ्च तदेव॥ त्रैराशिकगणितमाह।

भा०:—जो रुपया उधार लिया जाता उसे "मूलधन" या असल रु-
या कहते हैं। और महाजन को दिये हुए "मूलधन" से काम लेने के ब-
ले में जो कुछ अधिक दिया जाता उसे सूद "ब्याज" "वृद्धि" या "मूलफल"
हते हैं। और ब्याज सहित धन को "सफल" या "मिश्रधन" वा "सर्वधन"

कहते हैं। सर्वधन को इष्टकाल से गुणा करे, पुनः इसको मूलधन से गुणा करे। मूल (१००) के आधे को (५०) वर्ग कर उस में जोड़े और इस का वर्गमूल निकाले और उस मूल को मूलधन के आधे से घटावे और शेष को इष्टकाल से भाग देवे। भागफल इष्टधन का व्याज होगा। उदाहरण जैसे:—मूलफल सूदसहित १६ रु० ६ मास (इष्टकाल) से गुणा करने पर ९६ को मूलधन १०० से गुणा किया तो ९६०० हुआ। १०० का आधा ५०×५०=२५०० इसको ९६००+२५००=१२१०० इसका वर्गमूल ११० हुआ, इसमें मूलधन के आधे ५० को घटाया तो ६० रहे, इसमें इष्टकाल ६ का भाग दिया तो १० मिला, यही एक मास में १०० का व्याज हुआ ॥ २५ ॥

त्रैराशिकफलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा।
लब्धं प्रमाणभजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात् ॥ २६ ॥

प्रमाणं फलमिच्छा चेति त्रयो राशयस्स्युः। तैर्निष्पन्नं कर्म त्रैराशिकम् त्रैराशिके यः फलाख्यो राशिस्तत्त्रैराशिकफलराशिमिच्छाख्यराशिना हतं कृत्वा प्रमाणाख्यराशिना भाजितं कार्यम्। एवं भाजितात्तस्माद्राशेर्यल्लब्धं तदिदमिच्छाफलं भवति। उदाहरणम्।

ताम्बूलानां शतेनाम्रदशकं लभ्यते यदि।
ताम्बूलषष्ट्या लभ्यन्ते कियन्त्याम्राणि तद्वद ॥

अत्र ताम्बूलशतं प्रमाणराशिः। आम्रदशकं फलराशिः। ताम्बूलषष्टिरिच्छाराशिः। तेन गुणितात्फलात्प्रमाण लब्धं षट्संख्यं भवति। तदिच्छाफलम्। भिन्नेषु राशिषु यो विशेषस्तमार्योर्धेनाह।

पहिली राशि को " प्रमाणराशि " दूसरी को " फलराशि " और तीसरी को " इच्छाराशि " कहते हैं। फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करे और प्रमाणराशि से भाग देवे तो भागफल इच्छाराशि (उत्तर) होगी उदाहरण जैसे:—१०० पान में तो, १० आम आते हैं तो ६० पान में कितने आम आवेंगे? ६०×१०=६००, ६०० ÷ १००=६ आम आवेंगे। यही इच्छाराशि हुई ॥ २६ ॥

छेदाः परस्परहता भवन्ति गुणकारभागहाराणाम्।

गुणकारभागहाराणां छेदाः परस्परहतास्स्फुटा भवन्ति। एतदुक्तं भवति गुणगुण्ययोराहतिरत्र गुणकारशब्देन विवक्षिता। हार्य इत्यर्थः। हार्यस्यछेदो

हारच्छेदेन गुणितो हारको भवति। हारकस्य छेदो हार्येण गुणितो हार्यो भवति। इति गुणगुण्ययोस्सच्छेदत्वे तच्छेदयोराहतिर्हार्यस्य छेदस्स्यात्। सवर्णीकरणमुत्तरार्धेनाह।

भा०:—" गुण " एवं " गुण्य " को परस्पर गुणा करना, यहां गुणकार शब्द से विवक्षित है। अर्थात् " हार्य "। " हार्य " के छेद " को हारक से गुणा करने पर हारक होता है। हारक के छेद को " हार्य " से गुणा करने पर हार्य होता है॥

छेदगुणं सच्छेदं परस्परं तत्सवर्णत्वम् ॥२७॥

सच्छेदं। अंशोऽत्र विशेष्यः। छेदसहितमंशं परस्परच्छेदगुणं कुर्यात्। तत्तदंशं तत्तच्छेदञ्च स्वव्यतिरिक्तानां परेषां सर्वेषां छेदैः क्रमेण गुणितं कुर्यादित्यर्थः। तत्सवर्णत्वम्। सवर्णीकरणंतदित्यर्थः। एवं कृते सर्वे राशयस्समच्छेदा भवन्ति। उदाहरणम्।

> अष्टांशकास्त्रयः पादहतास्त्र्यंशोद्धृताः कति।
> गुणगुण्यहरांस्तांश्च समच्छेदान् वदे वद॥

अत्र गुण्यः ३/८। गुणः १/४। अनयोर्हतिः ३/३२। एष हार्यः। हारः १/३। हारकस्य छेदेन गुणितो हार्यः ९। एष हार्यः। हार्यस्य छेदेन गुणितो हारः ३२। एष हारः। एवं नवसंख्योऽत्र हार्यो भवति द्वात्रिंशत्संख्यो हारकश्च। सवर्णीकरणन्यासः ३/८। १/४। १/३। अत्र गुण्यराशिस्तच्छेदश्च गुणकारहारयोश्छेदाभ्यां हतौ कार्यौ गुणकारराशिस्तच्छेदश्च गुण्यहारकयोश्छेदाभ्यां हतौ कार्यौ हारकराशिस्तच्छेदश्च गुणगुण्ययोश्छेदाभ्यां हतौ कार्यौ। तथा कृते गुण्यराशिः ३६/९६। गुणः २४/९६। हरः ३२/९६। एवं सर्वत्र वेद्यम्॥ व्यस्तविधिमाह।

भा०:—छेद सहित अंश को परस्पर छेद गुण करे अर्थात् उस अंश और उस छेद को स्वकीय को छोड़ अन्यों के छेद के साथ क्रम से गुणा करे। इसी को " सवर्णीकरण " या " समच्छेद " कहते हैं। उदाहरण जैसे—

गुण्य ३/८ गुण १/४ इन दोनों का गुणन फल ३/३२। यह " हार्य " हुआ। हार १/३.

हारक के छेद के साथ गुणा करने पर हार्य ९ हुआ। " हार्य " के छेद के साथ गुणा किया तो हार ३२ यह हार हुआ। सवर्णीकरण न्यास—

$\frac{३}{८}, \frac{१}{४}, \frac{१}{३}$ । यहां गुण्यराशि $\frac{३६}{९६}$ गुण $\frac{२४}{९६}$, हर $\frac{३२}{९६}$ इसी प्रकार और भी जानो ॥२७॥

गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्ति गुणकाराः ।
यः क्षेपस्सो ऽपचयो ऽपचयः क्षेपश्च विपरीते ॥ २८ ॥

दृश्यराशिनोद्दिष्टराश्यानयने व्यस्तविधिः क्रियते। उद्दिष्टराशौ यो गुणकारस्स भागहारः। हारो गुणः। क्षेपो ऽपचयः। अपचयः क्षेपस्स्यात्। एवं विपरीते व्यस्तविधौ भवति। अनुक्तमप्यनेनैव सिध्यति वर्गे मूलं मूलीकरणे वर्गीकरणमित्यादि। उदाहरणम्।

कश्चिद्घ्नः पञ्चभिर्भक्तष्षड्भिर्युक्तः पदीकृतः।
एकोनो वर्गितो वेदसंख्यस्स गणकोच्यताम् ॥

दृश्यम् ४। वर्गीकृतत्वात्पदीकृतः २। एकोनत्वादेकयुतः ३। पदीकृतत्वाद्वर्गितः ९। षड्भिर्युतत्वात्तैर्हीनः ३। पञ्चभिर्हृतत्वात्पञ्चभिर्गुणितः १५। त्रिभिर्गुणितत्वात्त्रिभिर्भक्तः ५। एष उद्दिष्टराशिः॥ यत्र बहवस्संघास्स्युः। तत्रैकैकं संघमपास्य शेषसंघानां संख्याश्च गणितास्स्युः। तत्र सर्वसंख्यानां योगसंख्यानयनमाह।

भा०:—"दृश्यराशि" द्वारा "उद्दिष्ट राशि" के लाने को "व्यस्तविधि" कहते हैं। उद्दिष्ट राशि में जो गुणकार, वह भाग हार होता है। हार गुण होता, क्षेप अपचय होता और अपचय क्षेप होता है इसप्रकार विपरीत व्यस्त विधि में होता है। उदाहरण जैसे—दृश्य ४ इस का मूल २, १ कम करने से ३, ३ का वर्ग ९ इसमें से छः, घटाने से ३। ३ को ५ से गुणा किया तो १५ हुआ इसमें ३ का भाग दिया तो यही उद्दिष्ट राशि हुई ॥ २८ ॥

राश्यूनं राश्यूनं गच्छधनं पिण्डितं पृथक्त्वेन ।
व्येकेन पदेन हृतं सर्वधनं तद्भवत्येव ॥ २९ ॥

राश्यूनं राश्यूनम्। एकैकसंघहीनं संघैक्यं कृत्वा तत्तत्संघयोगं गच्छाख्यं धनं पृथक्त्वेन स्थापितं संघतुल्यस्थानेषु स्थानेषु स्थापितं यत् तत्पिण्डितं कृत्वा। तेषामैक्यं कृत्वा। व्येकेन पदेन। एकसंघहीनेतरसंख्यया। हरेत्। तत्र लब्धं यत् तदेव सर्वधनं भवति। सर्वेषां संघधनानामैक्यमित्यर्थः। तस्मात्सर्वधनात्पूर्वस्थापितराश्यूनसंघधनेषु कैकस्मिन्विशोधिते सति शिष्टमेकैकसंघधनं भवति।

येन संघेन हीनमितरसंघधनं विशोध्यते। तत्र शिष्टं तत्संघधनं भवति। उदा०।

व्यूहास्त्रयश्श्येनकङ्काख्यहंसजा दृष्टा वनेऽत्रैकहीनेतरद्वयात्।

जाता तु संख्यार्कशक्राष्टिसम्मिता व्यूहत्रये प्राज्ञ संख्यात्र कथ्यताम्॥

अत्र प्रथमराशिं हित्वान्याभ्यां जाता संख्या १२। द्वितीयं हित्वान्याभ्यां जाता १४। तृतीयं हित्वान्याभ्यां जाता १६। पृथक्स्थितमेतत्त्रयं पिण्डीकृतम् ४२। एकहीनेन पदेन द्विसंख्येन हृतम् २१। एतद्व्यूहत्रयजाता सकलसंख्या। एषा प्रथमगदितार्कसंख्यया हीना ९। एतच्छ्येनमानम्। अथ समस्तसंख्या शक्रहीना ७। एतत्कङ्कमानम्। अथाष्टिहीना ५। एतद्धंसमानम्। अव्यक्तमूल्यानां मूल्यप्रदर्शनायाह।

भा०:—अनेक राशियों में से एक को छोड़ अवशिष्ट राशियों का योग करे योगफल "गच्छधन" होता है। इस प्रकार एक २ इतर राशियों का योग कर भिन्न रखता जावे और पुनः पृथक् रक्खी हुई राशियों का एकत्र योग करे। और सब राशियों में से एक घटाकर शेष राशि (जितनी हो) उसे उक्त संघयोग में भाग देवे, तो भागफल सब संघों का एक संघधन होगा। पुनः इस में क्रम से (पहिली, दूसरी, तीसरी) राशि को घटा देने से—एक २ संघधन होता जावेगा। उदाहरण जैसे—पहिली राशि को छोड़ कर अन्य दो राशियों से १२, दूसरी रा० को छोड़, अन्य राशियों से १४, तीसरी छोड़, अन्य राशियों से १६, इन तीन का योग ४२ हुआ। इस में दो का भाग दिया तो २१, यही तीनों व्यूहों की संख्या हुई। २१−१२=९ यह श्येन मान हुआ, पुनः २१−१४=७, यह कङ्कमान हुआ और २१−१६=५, यह हंसमान हुआ॥ २९॥

गुलिकान्तरेण विभजेद्द्वयोः पुरुषयोस्तु रूपकविशेषम्।
लब्धं गुलिका मूल्यं यद्यर्थकृतं भवति तुल्यम्॥ ३०॥

गवादिद्रव्यं गुलिकाशब्देनोच्यते। रूपकशब्देन पणादिसंज्ञितं स्वर्णादिद्रव्यम्। तत्र रूपकाख्यद्रव्ययोर्विशेषं विश्लेषं गुलिकाख्यद्रव्ययोरन्तरेण विभजेत्। तत्र लब्धमेकैकस्य गुलिकाख्यद्रव्यस्य मूल्यं भवति। यद्यर्थकृतं भवति तुल्यम्। यत्र द्वयोः पुरुषयोस्स्वस्वगुलिकामूल्यरूपकयुतिमानं तुल्यं भवति तत्रैवं विधिरित्यर्थः। उदाहरणम्।

समस्वयो रूपकाणां शतं षष्टिः क्रमाद्धनम्।

गावष्षड्विंशोऽष्टौ तत्र गोमूल्यकं कियत्॥

प्रथमस्य रूपकमानम् १०० । गुलिकाख्यगोमानम् ६ । द्वितीयस्य रूपकमानम् ६० । गुलिकाख्यगोमानम् ८ । अत्र रूपकान्तरम् ४० । एतद्गुलिकान्तरेण २ । अनेन भक्तम् २० । एतद्विंशतिसंख्यमेकैकगोमूल्यम् । अत्रैकैकस्य विंशत्यधिकं शतद्वयं रूपकं भवति ॥ ग्रहान्तराद्ग्रहयोगकालानयनमाह ।

भा०ः—गौ आदि द्रव्य का नाम "गुलिका" और स्वर्ण आदि द्रव्य के पण आदि का नाम "रूपक" है दो रूपक संज्ञक द्रव्यों में जो विशेष हो उस में न्यून को घटाकर शेष से भाग देवे, भागफल एक २ गौ का मूल्य होगा । जहां दोनों पुरुषों को अपने २ गौ के मूल्य का योग तुल्य हो वहां यह नियम होगा । उदाहरण जैसे—एक पुरुष के पास १००) रुपये एवं ६ गौ और दूसरे पुरुष के पास ६०) रुपये एवं ८ गौ, तो प्रत्येक गौ का मूल्य क्या होगा ? रुपये १००–६० रु०=४० रु० । और ८ गौ में से ६ गौ० घटाया तो शेष २ रहे । ४० ÷ २ =२० रु० प्रति गौ का मूल्य बीस बीस रु० हुआ । और प्रत्येक पुरुष को १००+ १२०=२२० रुपये, १६०+६०=२२० रुपये हुये ॥ ३० ॥

भक्ते विलोमविवरे गतियोगेनानुलोमविवरे द्वे ।
गत्यन्तरेण लब्धौ द्वियोगकालावतीतैष्यौ ॥ ३१ ॥

विलोमयोर्वक्रयोर्ग्रहयोर्विवरे स्फुटान्तरे द्वे लिप्तीकृते तयोर्गतियोगेन वक्रस्पष्टगत्योर्योगेन लिप्तीकृतेन भक्ते कार्यें । अनुलोमयोर्वक्रिणोर्द्वयोरवक्रिणोर्द्वयोर्वा विवरे द्वे गत्यन्तरेण वक्रगत्योर्वा स्पष्टगत्योर्वान्तरेण भक्ते कार्ये । द्वे इतिवचनमन्तरस्य द्वैविध्यात् । शीघ्रगतिहीनो मन्दगतिरन्तरं भवति । मन्दगतिहीनश्शीघ्रगतिरन्तरं भवति । इति द्वैविध्यम् । तत्र हरणे लब्धौ द्वौ द्वियोगकालौ । द्वयोर्ग्रहयोर्योगकालौ दिनात्मकौ । अतीतैष्यौ भवतः । शीघ्रगतिरग्रतो गच्छति चेदतीतस्स कालः । मन्दगतिरग्रतो गच्छति चेदेष्यस्स कालः । विलोमे तु ऊर्ध्वगतो वक्री चेदेष्यः । अन्यथातीतः ॥ अथ कुट्टाकारगणितप्रदर्शनार्थमार्याद्वयमाह ।

भा०ः—जिन दो ग्रहों का "योग" जानना हो, उन में से यदि शीघ्रगामी ग्रह की अपेक्षा अधिक हो तो "योग" गत हुआ (इष्ट काल से पहिले) और मन्दगामी ग्रह शीघ्रगामीग्रह की अपेक्षा अधिक हो तो "योग" भावी (इष्ट काल से पीछे) जानना । यह नियम दो पूर्वगामी ग्रहों के लिये है और वक्र गामी ग्रहों का तो उसके उलटा होता है । अर्थात् वक्री (टेढ़ा चलने वाला) मन्दगामी ग्रह की अपेक्षा वक्रीशीघ्रगामीग्रह अधिक हो तो

"योग" भावी एवं वक्री शीघ्र गामीग्रह की अपेक्षा वक्री मन्दगामी ग्रह अधिक हो तो "योग" वीत गया जानना। और दोनों ग्रहों में से एक वक्री एवं दूसरा पूर्वगामी ग्रह हो तो वक्रीग्रह से पूर्वगामी ग्रह अधिक हो तो योग गत और पूर्वगामी ग्रह से मन्द गामी ग्रह अधिक हो तो "योग" भावी जानना। दो इष्ट कालिकग्रहों की अन्तर कला को अपनी २ गति कला द्वारा गुणा करे गुणन फल में दो सरलगामी या वक्रगामी ग्रह हों, उनकी स्फुटगति के अन्तर कला का भाग देवे, भागफल से "योग" का (उपरोक्तप्रकार) ज्ञानहोगा॥३१॥

अधिकाग्रभागहारं छिन्द्यादूनाग्रभागहारेण।
शेषपरस्परभक्तं मतिगुणमग्रान्तरे क्षिप्तम्॥ ३२॥
अधउपरिगुणितमन्त्ययुगूनाग्रच्छेदभाजिते शेषम्।
अधिकाग्रच्छेदगुणं द्विच्छेदाग्रमधिकाग्रयुतम्॥ ३३॥

इति। द्विविधः कुट्टाकारः। निरग्रस्साग्रश्चेति। केनचिद्गुणकारेण गुणिते भाज्ये भाजकेन भक्ते यश्शेषस्तेन शेषेण भाज्यभाजकाभ्याञ्च तच्छेषप्रदगुणकार-राशेरानयनाय यत्कर्म क्रियते स निरग्रकुट्टाकार इत्युच्यते। तत्रानीतस्स गुण-कारः पूर्वगुणकाराद्भिन्नश्चेत् तस्मिन्स्वहारप्रक्षेपात्पूर्वगुणकारस्सिध्यति। यत्रैके-नैव राशिना भाज्यद्वये गुणिते भाजकद्वयेन हृते शेषद्वयं भवति तत्र ताभ्यां तत्तद्भाज्यभाजकाभ्याञ्च तत्तच्छेदद्वयगुणकारद्वये निरग्रविधिनानीते सति यदि तद्गुणकारद्वयं भिन्नं भवति। तदा ताभ्यां तद्धारकाभ्योञ्च पूर्वगुणकारानयने यः कर्मशेषो भवति। स साग्रकुट्टाकार इत्युच्यते। शेषद्वयेनानीतौ यौ गुणकारौ तयोरधिकोऽधिकाग्र इत्युच्यते। ऊन ऊनोऽग्रः। साग्रकुट्टाकारप्रदर्शनपरमेत-दार्याद्वयम्। निरग्रोऽप्यस्मादेव सिध्यति। अधिकाग्रभागहारं छिन्द्यादूना-ग्रभागहारेण। अधिकाग्रसाधनभूतं भागहारमूनाग्रसाधनभूतेन भागहारेण छि-न्द्यात्। हरेत्। शेषपरस्परभक्तम्। अनन्तरं शेषपरस्परहरणं कार्यम्। शेषशब्दो ऽत्र हृतशेषस्य तत्समीपस्थितस्योनाग्रहारकस्य च प्रदर्शकः। हृतशेषस्योनाग्रभा-गस्य च परस्परहरणं कार्यमित्यर्थः। यदा पुनरधिकाग्रभागहारस्याल्पत्वादूनाग्र-हारेण प्रथमहरणं न सम्भवति तदाधिकाग्रहारोनाग्रहारोनाग्रहारयोः परस्पर-हरणं कार्यम्। कुट्टाकारे हि भाज्यभाजकयोः परस्परहरणं विहितम्। तत्र भा-ज्येन भाजकस्य प्रथमहरणञ्चाभिप्रेतम्। अत्राप्यधिकाग्रभागहारो भाज्यत्वेन कल्पितः। ऊनाग्रहारो भाजकत्वेन कल्पितः। तत्र भाज्यस्याल्पत्वापादनाय

तस्य प्रथमहरणं विहितम् । यदा प्रथममेवाल्पो भाज्यस्तदा तस्य प्रथमहरणं न कार्यम् । परस्परहरणे तत्तत्फलञ्चाधोऽधः क्रमेण स्थाप्यं यथा फलवल्ली भवति। परस्परभक्तमितिवचनात्फलग्रहणमप्यभिहितं भवति । अन्यस्मादन्यस्माच्च भक्तं फलं हि परस्परभक्तं तत्स्थाप्यमिति शेषः । यावद्भक्ते शेषयोरल्पत्वान्मतिः कल्प्या भवति । तावदेवं परस्परहरणं तत्फलास्थापनञ्च कार्यम् । परस्परहरणस्य द्विष्टत्वात्फलपदानां समत्वे परस्परहरणं समाप्यते । अतस्समपद एव मतिः कल्प्यते । मतिगुणमग्रान्तरे क्षिप्तम् । भाज्यशेषे यया संख्यया निहते तस्मिन् क्षेप्यराशिं प्रक्षिप्य वा तस्माच्छोध्यराशिं विशोध्य वा भाजकशेषेण हृते निश्शेषो भवति भाज्यशेषः सा संख्या मतिर्भवति । अत्राग्रयोरन्तरं क्षेप्यराशिस्स्यात् । तां मतिं बुद्ध्या प्रकल्प्य तया भाज्यशेषमल्पसंख्यं निहत्याग्रयोरन्तरे क्षेप्यसंज्ञिते प्रक्षिप्याधिकसंख्येन भाजकशेषेण निश्शेषं हृत्वा फलं गृह्णीयात् । पुनस्तां मतिं फलपदानामधो विन्यस्य तस्या अधस्ताल्लब्धञ्च विन्यसेत् । मतिकल्पनायास्सुखत्वापादनाय हि परस्परहरणं विधीयते । तन्निवृत्तये पुनरधउपरिगुणितमन्त्ययुगित्यादिना वल्ल्युपसंहारश्च विहितः । अतो निश्शेषहरणान्तं फलं ग्राह्यमिति सिद्धम् । अथ मतिश्च । अधउपरिगुणितमन्त्ययुगितिवचनादधश्शब्देनोपान्त्यपदं गृह्यते । उपान्त्यपदेन स्वोर्ध्वपदं निहत्य तस्मिन्नन्त्यपदं प्रक्षिपेत् । पुनरप्येवं कुर्याद्यावद्द्वावेव राशी भवतः । तत्र राश्योरुपरिस्थ एव ग्राह्यः । ऊनाग्रच्छेदभाजिते शेषं अधिकाग्रच्छेदगुणं द्विच्छेदाग्रमधिकाग्रयुतम् । द्वयो राश्योरुपरिस्थितं राशिमूनाग्रच्छेदेन हरेत् । तत्र शिष्टमधिकाग्रच्छेदेन निहत्य तस्मिन्नधिकाग्रं प्रक्षिपेत् । स द्विच्छेदाग्रराशिर्भवति । पूर्वोक्तभाज्यद्वयस्य शेषद्वयप्रदो गुणकार इत्यर्थः । निरग्रेऽप्येवमेव विधिः । किन्तु तत्र मतिकल्पनायां हृतशेषो द्रष्यराशिश्शोध्याख्यः । एष द्रष्यश्चेत् क्षेप्याख्यः । राशिद्वये जात ऊपरिस्थराशिं भाजकेन हरेत् । तत्र शेषो गुणकारोऽहर्गणादिस्स्यात् । अधस्थराशिं भाज्येन हरेत् । तत्र शेषो लब्धं भगणादिसंज्ञितं फलं स्यात् । अधिकाग्रच्छेदगुणमित्यादिको विधिस्तत्र न भवति । अत्रैवं वा योजना । अधिकाग्रभागहारं छिन्द्यादूनाग्रभागहारेण । इति । अधिकाग्रभागहारशब्देनाधिकसंख्येन भाज्यभाजकावुक्तौ । भाज्यस्यापि हि परस्परहरणे भाजकत्वं सम्भवति । तावूनाग्रभागहारेणाल्पसंख्येन केनचिद्राशिना छिन्द्यात् । निश्शेषं हरेत् । अपवर्तनस्य संभवेऽपवर्तयेदित्यर्थः । पुनश्शेषपरस्परहरणादिकम् । अपवर्तितयोः परस्परहरणादिकं कार्यम् । इति । उदाहरणम् ।

"राशौ वसुघ्ने नवदस्रभक्ते, शेषश्चतुर्भिस्तुलितस्तथास्मिन् ।
अत्यष्टिनिघ्ने शरवेदभक्ते, शेषोऽद्रितुल्यो बुध कस्स राशिः "॥

प्रथमे भाज्यो ८ । हरः २९ । शेषः ४ । भाज्यभाजकयोः परस्परहरणे कृते

३

तत्फलानि वल्ल्यां संस्थाप्य जाता फलवल्ली १ । भाज्यशेषः १ । भाजकशेषः २ ।

१

चतुस्संख्यशेषराशिश्शोध्यः । तत्र कल्पिता मतिः ६ । मतिगुणिताद्भाज्यशेषा-
च्छोध्यराशौ विशोधिते शेषः २। तस्माद्भाजकशेषेण लब्धं फलम् १ । मतिफला

३
१
भ्यां युता वल्ली १ । अधउपरिगुणितमन्त्ययुगित्यादिना लब्धौ राशी ७३ । अ-
६　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　२०
१

नयोरुपरिस्थितं भाजकेन २९ अनेनं हरेत् । तत्र शेषः १५। एष गुणाकारः। सा-
ग्रविधावयमग्रः । अधस्स्थं भाज्येन ८ अनेन हरेत् । तत्र शेषः ४ । एष फलरा-
शिः । अत्रानीतेन गुणाकारेण हताद्भाज्याद्भाजकेन लब्धं फलमित्यर्थः। एवं निर-
ग्रकुट्टाकारः ॥ अथ द्वितीये भाज्यः १७ । भाजकः ४५ । शेषः ७ । एतैरपि पूर्वव-
दानीतो गुणकारराशिः ११ । साग्रविधावयमग्रः । अयमूनाग्राख्यः । पूर्वानीतो
ऽधिकाग्राख्यः १५ । अग्रौ १५ । अग्रान्तरम् ४। अयं क्षेप्यराशिः । अधिकाग्रहारः

११

२९ । अयं भाज्यः । ऊनाग्रभागहारः ४५ । अयं भाजकः । अत्र प्रथमहरणमधि-
काग्रहारस्यौनत्वान्न सम्भवति। अतो भागहारयोः परस्परहरणं कृत्वा वल्ली स-
म्पाद्याग्रान्तरं क्षेप्यराशिं प्रकल्प्य निरग्रविधिना गुणकारमानयेत् । तथानीतो
गुणराशिः ३४ । अयमधिकाग्रच्छेदेन २९ । अनेन गुणितः । ९८६ । अधिकाग्रेण
१५ । अनेन युतम् । १००१। अयं द्विच्छेदाग्राख्यो गुणराशिः । उद्दिष्टो गुणराशि
रयमेव । यदा पुनरेवमानीतो द्विच्छेदाग्र उद्दिष्टगुणाद्भिन्नस्तदा तस्मिन्स्वहार
मिष्टगुणं प्रक्षिप्योद्दिष्टगुणस्साध्यः । स्वहारस्त्वधिकाग्रोनाग्रभागहारोस्संवर्ग
स्यात् । अथवा तयोरेव भागहारयोः परस्परभक्तशेषेण भक्तस्तयोरेव संवर्गो
हारस्स्यात् । अयं साग्रकुट्टाकारो गणितविद्भिर्बहुधा क्रियते । निरग्रश्च वारकु-
ट्टाकारवेलाकुट्टाकारादिभेदाद्बहुधा भवति । तत्सर्वं महाभास्करीयभाष्यस्य

व्याख्याया सिद्धान्तदीपिकाख्यायां विस्तरेण प्रदर्शितम्। तस्मादिहास्मा-भिरनादृतम्।

भा०:—कुट्टाकार गणित (इनडिटरमिनेट इक्वेशन) दो प्रकार का होता है एक को "निरग्र कुट्टाकार" एवं दूसरे को "साग्र कुट्टाकार" कहते हैं। किसी गुणकार से गुणा कर, भाजक द्वारा भाग देने पर जो शेष रहता, उस शेष एवं भाज्य, भाजक द्वारा "उक्त शेषप्रदगुण कारराशि" के लाने के लिये जो कर्म किया जाता उसे "निरग्र कुट्टाकार" कहते हैं। इस प्रकार लाया हुआ वह गुण कार, यदि "पूर्व गुणकार" से भिन्न हो तो उस में "स्वहार" देने से "पूर्व गुणकार" सिद्ध होता है। जहां एक ही राशि से दो भाज्य गुणित हों, एवं दो भाजक से भाग देने पर जो शेष रहता, वहां उन से एवं भाज्य, भाजक से उन २ के दोनों "छेद" एवं दोनों "गुणकार" निरग्रविधि" से लाने पर यदि दोनों गुण कार भिन हों तो उन से एवं उन के दोनों हारकों से "पूर्वगुणकार" लाने के लिये जो कर्म शेष रहता उस का नाम "साग्र कुट्टाकार" है। और दोनों शेषों से जो दो गुणकार लाये गये, उन में से जो अधिक होता उसे "अधिकाग्र" एवं जो न्यून होता उसे "ऊनाग्र" कहते हैं ॥ ३२। ३३ ॥

इति पारमेश्वरिकायां भटदीपिकायां गणितपादो द्वितीयः ॥



अथ कालक्रियापादः प्रदर्श्यते। तत्र कालविभागमाह।

वर्षं द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत्स मासस्तु।
षष्टिर्नाड्यो दिवसष्षष्टिस्तु विनाडिका नाडी ॥ १ ॥

एकं वर्षं द्वादश मासाः भवन्ति। त्रिंशद्दिवसा यस्मिन् स त्रिंशद्दिवसः मासस्त्रिंशद्दिवसस्स्यात्। एको मासस्त्रिंशद्दिवसा भवतीत्यर्थः। एको दिवसष्षष्टिर्नाड्यो भवति। एका नाडी षष्टिर्विनाडिका भवति। सौरसावनचान्द्रादि संज्ञितेषु वर्षेषु तत्तद्वर्षकालाद्द्वादशांशस्तत्तन्मासकालः। एवं स्वमानवशात्तत्तद्दिननाड्यादिकाला वेद्याः। कालभेदा नवविधा उक्ताः।

"ब्राह्मं पित्र्यं तथा दिव्यं प्राजापत्यञ्च गौरवम् ॥
सौरञ्च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥"

इति—नक्षत्रमण्डलभ्रमणकालतुल्यस्य नाक्षत्राख्यदिनस्यावयवभूताया विनाडिकायाः कालमार्यार्धेन प्रदर्शयति।

भा:०—एक वर्ष में १२ महीने होते हैं, एक मास में ३० दिन, एक दिन में ६० नाड़ी, एक नाड़ी में ६० विनाडी होती हैं। सौर, सावन, चान्द्र, आदि संज्ञक वर्षों में उस २ वर्ष के बारह २ महीना आदि उक्त प्रकार जानना। कालमान ९ प्रकार का होता है:—जैसा (कि सूर्य सिद्धान्त में लिखा है)—१ ब्राह्मय,२पित्र्य,३ दिव्य, ४ प्राजापत्य, ५ वार्हस्पत्य, ६ सौर, ७ सावन, ८ चान्द्र, और ९ नाक्षत्र, ये नव प्रकार के कालमान हैं ॥ १ ॥

गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणाः ।

यावता कालेन षष्टिर्गुर्वक्षराण्युच्चरति मध्यमया वृत्त्या पुरुषः । तावान्काल आर्क्षी विनाडिका। ऋक्षसंबन्धिनी विनाडिका। ऋक्षाणामाधारभूतमण्डलं यावता कालेन परिभ्रमति । स काल आर्क्षो दिवसः। तस्य षष्ट्यंश आर्क्षी नाडिका । तस्याष्षष्ट्यंश आर्क्षी विनाडिका सेयमित्यर्थः । षडेव वा प्राणाः यावता कालेन पुरुषष्षडुच्छ्वासान्.करोति। तावान्कालश्चार्क्षी विनाडिका स्यात्। द्वावपि कालौ तुल्यावित्यर्थः ॥ कालविभाग एवं प्रदर्शितः । क्षेत्रविभागश्च तथा ज्ञेयइत्युत्तरार्धेनाहः ।

भा०:—जितने समय में ६० गुरु (दीर्घ) अक्षर का उच्चारण पुरुष मध्यम वृत्त से करता उतने काल को नाक्षत्रिक विनाडिका कहते हैं।एक रात्रि में माध्यान्हिक रेखा पर कोई स्थिर तारा दीख पड़े उस समय से उसके दूसरे रात्रि को उसी रेखा पर उक्त तारा दीख पड़े, उतने समय को नाक्षत्रिक अहोरात्र कहते हैं। इस के ६० वें अंश को नाक्षत्रनाडिका कहते हैं । नाडिका के ६० वें भाग को विनाड़िका कहते हैं। जितने काल में पुरुष छः श्वास करता उतने काल को नाक्षत्रिक विनाडिका कहते हैं । अर्थात् ६० गुरु अक्षर के परिमाण एवं ६ श्वास के परिमाण से—जो काल होता वह परस्पर तुल्य होता है ।

एवं कालविभागः क्षेत्रविभागस्तथा भगणात् ॥ २ ॥

वर्षात्कालविभाग एवमुक्तः । भगणात्क्षेत्रविभागोऽपि तथा ज्ञेयः । एतदुक्तं भवति । द्वादशांश एको राशिर्भवति । राशेस्त्रिंशांश एको भागः । भागस्य षष्ट्यंश एका लिप्ता । लिप्तायाष्षष्ट्यंश एका विलिप्ता । विलिप्तायाष्षष्ट्यंश एका तत्परा । इति भगणादयः क्षेत्रात्मकाः । वर्षादयः कालात्मकाः ॥ राशिचक्रे चरतोर्द्वयोर्ग्रहयोश्चतुर्युगे योगसंख्याज्ञानमार्याधेनाह ।

भा०:—इसी प्रकार भगण से क्षेत्रविभाग जानना। १२ अंश को १ राशि, राशि के ३० वें भाग को १ भाग, १ भाग के ६० वें भाग को १ लिप्ता, १ लिप्ता के ६० वें भाग को १ विलिप्ता, १ विलिप्तिका के ६० वें भाग को १ तत्पर कहते हैं ॥ २ ॥

भगणा द्वयोर्द्वयोर्ये विशेषशेषा युगे द्वियोगास्ते।

द्वयोर्ग्रहयोर्यौ युगभगणसमूहौ तयोर्द्वयोर्विशेषशेषाः। द्वयोर्भगणसमूहयोरधिकादल्पे विशोधिते शिष्टा ये भगणास्ते युगे द्वियोगाः। द्वयोर्ग्रहयोश्चतुर्युगे योगसंख्या भवति। तुल्यकालं मण्डलमारुह्य मन्दशीघ्रगतिभ्यां चरतोर्ग्रहयोर्यदा योगो भवति। तदा हि शीघ्रगतेरेकपरिवर्तनाधिक्यं स्यात्। अतः परिवर्तनान्तरतुल्या मण्डले चरतोर्ग्रहयोर्योगास्स्युः॥ युगे व्यतीपातसंख्यामपरार्धेनाह।

भा०:—दो ग्रहों का जो युगभगणसंख्या हो, उन दोनों के विशेष शेष अर्थात् दोनों भगण समूह से अधिक से अत्यन्त को घटाने पर जो शेष रहे वही युग में 'द्वियोग' होगा। दोनों ग्रहों की चतुर्युग में योगसंख्या होगी। तुल्य काल में मण्डल से चलकर मन्द और शीघ्र गति से चलते हुए दो ग्रहों का जब योग होता है, तब शीघ्र गति से एक का परिवर्त्तन अधिक होता, अतएव परिवर्त्तनान्तर तुल्य से मण्डल में चलते हुए ग्रहों के योग होते हैं।

रविशशिनक्षत्रगणास्संमिश्राश्च व्यतीपाताः ॥ ३ ॥

रविशशिनोर्नक्षत्रगणा युगे यावन्तः प्रथमं रविभगणं गणयित्वा पुनश्शशिभगणे च गणिते यावन्त इत्यर्थः। सम्मिश्राश्च। पुनर्द्वयोर्भगणैक्ये च गणिते यावन्तस्तावन्तो युगे व्यतीपाता भवन्ति। रविशशिनोर्भगणैक्यद्विगुणतुल्या इत्यर्थः। अत एतदुक्तं भवति। रविशशिनोर्योगे चक्रार्धे एका व्यतीपातस्स्यात्। पुनस्तयोर्योगे चक्रे द्वितीयो व्यतीपातस्स्यात्। इति। इह स्थूलतया व्यतीपात उक्तः। सूक्ष्मस्तु मयेनोक्तः।

> "एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
> तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः॥
> विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
> समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतिः॥" सू० सि०

इति। अत्रापि मण्डलभगणार्धशब्दाभ्यां सूर्याचन्द्रमसोर्भिन्नगोलता तुल्यगोलता च क्रमादभिहिता। इति वेद्यम्॥ उच्चनीचवृत्तस्य परिवर्तभार्योर्धेनाह।

भा०:-जब सूर्य्य और चन्द्रमा भिन्न २ अयन में होते एवं दोनों के स्पष्ट राशि आदि जोड़ने से ६ राशि की बराबर हो, तो व्यतीपात नामक पात होता है। युग में जितने सूर्य्य के भगण हों, उनको प्रथम गिने पुनः चन्द्रमा के भगण को गिनने पर जितने भगण हों, दोनों को जोड़े और योगफल जितना हो युग में उतने व्यतीपात नामक पात जानना ॥ ३ ॥

स्वोच्चभगणास्स्वभगणैर्विशेषितास्स्वोच्चनीचपरिवर्ताः ।

उच्चभगणास्वभगणयोरन्तरं स्वोच्चनीचपरिवर्तः । इत्यर्थः । चन्द्रस्य तुङ्गभगणस्वभगणयोरन्तरं मन्दोच्चनीचपरिवर्तः। इतरेषान्तु षण्णां मन्दोच्चस्य स्थिरत्वात्स्वभगणा एव मन्दनीचोच्चपरिवर्ताः । कुजादीनां पञ्चानां शीघ्रोच्चभगणस्वभगणान्तरं शीघ्रोच्चनीचपरिवर्तस्स्यात् । सर्वे ग्रहास्स्वोच्चस्थं परितो भ्रमन्ति। तत्रोच्चासन्ने ग्रहे स्वोच्चत्वमुच्चस्य सप्तमस्थाने नीचत्वञ्च । तद्भ्रमणमत्रोच्चनीचपरिवर्त इत्युच्यते । तत्र मन्दोच्चादनुलोमेन भ्रमणं शीघ्रोच्चात्प्रतिलोमेन च युगे स्वोच्चनीचपरिवर्ता अत्रोक्ताः । द्वियोगन्यायसिद्धस्यास्य पृथगभिधानं ग्रहाणामुच्चनीचपरिवर्तप्रदर्शनाय ॥ गुरुवर्षाण्यपरार्धेनाह ।

भा०:-अपने उच्चभगण को स्वभगण से घटाकर शेष स्वोच्च नीच परिवर्त्त होगा । चन्द्रमा का उच्चभगण और स्वभगण का अन्तर मन्दोच्च, नीच परिवर्त्त है । इतर छः ग्रहों का शीघ्रोच्चभगण स्वभगणान्तर-शीघ्रोच्च नीच परिवर्त्त होगा । सब ग्रह अपने २ उच्च के चारों ओर भ्रमण करते हैं ।

गुरुभगणा राशिगुणास्त्वाश्वयुजाद्या गुरोरब्दाः ॥ ४ ॥

गुरोर्भगणा राशिगुणा द्वादशभिर्गुणिता युगे आश्वयुजाद्या अब्दा इत्यर्थः। अत्र वराहमिहिरः ।

"नक्षत्रेण सहोदयमस्तं वा याति येन सुरमन्त्री ।
तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥
वर्षाणि कार्त्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि ।
क्रमशस्त्रिभन्तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यञ्च यद्वर्षम् ॥" वृ० संहितायाम् ।

इति । मासक्रमेण कार्त्तिकादिमासक्रमेण वर्षक्रम इत्यर्थः ॥ सौरचान्द्रसावननाक्षत्रमानविभागमाह ।

भा०:-बृहस्पति के भगण को १२ से गुणन कर-गुणनफल युग में कार्त्तिक आदि बार्हस्पत्यवर्ष होगा ॥ ४ ॥

**रविभगणा रव्यब्दा रविशशियोगा भवन्ति शशिमासाः।
रविभूयोगा दिवसा भावर्ताश्चापि नाक्षत्राः ॥ ५ ॥**

यावता कालेन रवेर्भगणपरिवृत्तिस्तावत्कालो रव्यब्दाः। यावता कालेन रविशशिनोर्योगस्स्यात् तावत्कालश्चान्द्रमासः। एककालमारुह्य गच्छतोः पुनर्योगकाल इत्यर्थः। रविभगणतुल्या युगे रव्यब्दाः। युगे रविशशियोगतुल्या युगे चान्द्रमासाः। रविभूयोगशब्देन रवेर्भूपरिभ्रमणमभिहितम्। युगे रवेर्भूपरिभ्रमणतुल्या युगे भूदिवसाः। सावनदिवसा इत्यर्थः। युगे यावन्तो भावर्ता नक्षत्रमण्डलस्य परिभ्रमणानि तावन्तो—युगे नाक्षत्रदिवसाः। अत्र भचक्रभ्रमणसिद्धा नाक्षत्रदिवसा उक्ताः। न तु चन्द्रमतिसिद्धाः॥ अधिमासावमदिनान्याह।

भा०—जितने काल में सूर्य का भगण पूरा होता है उतने काल को १ 'सौर वर्ष कहते हैं। जितने काल में सूर्य्य और चन्द्रमा का योग होता है-उतने काल को " चान्द्रमास " कहते हैं। तुल्य समय में चलने से पुनः योग काल होता है। सूर्य्यभगण के तुल्य युग में सौरवर्ष होते हैं। युग में सूर्य्य और चन्द्रमा के योग की बराबर युग में चान्द्रमास होते हैं। युग में सूर्य्य का पृथिवी भ्रमण के तुल्य सावन या भूदिवस होते हैं। युग में जितने नक्षत्र मण्डल का आवर्त्त अर्थात् भ्रमण होता, उतने ही युग में नाक्षत्र दिवस होते हैं॥ ५॥

**अधिमासका युगे ते रविमासेभ्यो ऽधिकास्तु ये चान्द्राः।
शशिदिवसा विज्ञेया भूदिवसोनास्तिथिप्रलयाः ॥ ६ ॥**

युगरविमासहीना युगचान्द्रमासा युगेऽधिमासास्स्युः। युगभूदिवसोना युगचान्द्रदिवसा युगे तिथिप्रलयाः। अवमदिवसा इत्यर्थः मनुष्यपितृदेवानां संवत्सरप्रमाणमाह।

भा०:—युग के सौरमास से युग के चान्द्रमास को घटाने पर युग में अधिमास की संख्या निकल आवेगी। युग के सौरमास से युग के चान्द्र दिन घटाने पर युग में तिथि क्षय अर्थात् अवम या क्षय दिन होंगे॥ ६॥

**रविवर्षं मानुष्यं तदपि त्रिंशद्गुणं भवति पित्र्यम्।
पित्र्यं द्वादशगुणितं दिव्यं वर्षं समुद्दिष्टम् ॥ ७ ॥**

रविवर्षं मानुष्यं वर्षं भवति। (मानुष्यं वर्षं त्रिंशद्गुणितं पित्र्यं वर्षं भवति)। पित्र्यं वर्षं द्वादशगुणितं दिव्यं वर्षं भवति। अत्र सौरमानेन पित्र्यमुदितं शास्त्रान्तरे तु चान्द्रेणोदितम्। तथाच मयः

'त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम् । सू० सि०

इति ॥ ग्रहाणां युगकालं ब्राह्मदिनकालञ्चाह ।

भा०:-सौर वर्ष को मानुष्य वर्ष भी कहते हैं । मानुष्य वर्ष को ३० से गुणन करने पर पित्र्यवर्ष होता है । और पित्र्यवर्ष को १२ से गुणन करने पर दिव्यवर्ष होता है । यहां सौरमान से पित्र्यदिन कहा है परन्तु सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों में चान्द्रमान से कहा गया है ॥७॥

दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्यं युगं द्विषट्कगुणम् ।
अष्टोत्तरं सहस्रं ब्राह्मो दिवसो ग्रहयुगानाम् ॥ ८

दिव्यं वर्षसहस्रं द्विषट्कगुणं द्वादशगुणितं ग्रहसामान्यं युगं भवति । सर्वेषां ग्रहाणां युगमित्यर्थः । युगादौ सर्वेषां ग्रहाणां मण्डलादिगतत्वात्तेषां मध्यमानयने युगविशेषो नास्तीति सामान्यशब्देन द्योतितम् ॥ कालस्योत्सर्पिण्यादिविभागमाह ।

भा०:-१००० दिव्यवर्ष को १२ से गुणन कर गुणनफल ग्रह सामान्य युग होगा । अर्थात् सब ग्रहों का युग होगा । युग की आदि में सब ग्रहों को मण्डल के आदि में होने से इन के मध्यानयन में कोई युग विशेष नहीं है ॥८॥

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्धञ्च ।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात् ॥ ९ ॥ *

अस्यार्थो व्याख्याकारेण न प्रदर्शितः । अतो भटप्रकाशिकायां यदुक्तं तदत्र लिख्यते । यस्मिन् काले प्राणिनामायुर्यशोवीर्यादीन्युपचीयन्ते स काल उत्सर्पिणीसंज्ञः । यस्मिन्नपचीयन्ते सोऽवसर्पिणीसंज्ञः । युगस्य पूर्वार्धमुत्सर्पिणीकालः । अपरार्धमवसर्पिणीकालः । युगस्य मध्यमत्र्यंशः समकालः । आद्यन्तौ (सुषमा) दुष्षमासंज्ञौ त्र्यंशौ । एतत्सर्वमिन्दूच्चात्प्रभृति प्रतिपत्तव्यम् । अस्यार्थोऽभियुक्तैर्निरूप्य वक्तव्यः । इति प्रकाशिकायां व्याख्यानम् । अत्र इन्दूच्चात्प्रभृति प्रतिपत्तव्यमित्यनेन किमुक्तमिति न जानीमः । उक्तार्थस्य ग्रहगणितोपयोगित्वमपि न पश्यामः । एवं वार्थः । इन्दूच्चात्प्रभृति गतिमतां गतिर्युगाद्यर्धे उत्सर्पिणी । अपरार्धेऽवसर्पिणी मध्ये समा च । मध्यकालावस्थितिप्रदेशादूर्ध्वमधो वा ग्रहाणामवस्थितिर्युगान्तयोर्भवति । अतो मध्यमगतेर्भेदस्स्यात् । तस्मात्काले-काले निरूप्य मध्यमसंस्कारः कार्य इत्यर्थः । अथवा ।

---

* भटदीपिकापुस्तकद्वये सुषमा, चादावन्ते च दु० इत्यपपाठः ।

इन्दूच्चात्प्रभृति शान्युच्चानि मन्दोच्चानि शीघ्रोच्चानि च भवन्ति तेषां यावस्थितिः। सा उत्सर्पिणी समा च स्यात्। मध्ये काले यत्रावस्थितिरुच्चानां भवति। तस्मात्प्रदेशादूर्ध्वमधो वा युगाद्यन्तयोरेव स्थितिर्भवतीत्यर्थः। तेन वृत्तभेदास्स्यात् वृत्तभेदात् स्फुटभेदस्स्यात्। अतः—काले काले निरूप्य वृत्तसंस्कारः कार्य इत्यर्थः। इति। शास्त्रप्रणयनकालं तत्काले स्ववयःप्रमाणञ्च प्रदर्शयति।

भा०:—इस का अर्थ व्याख्याकार ने नहीं किया; इस लिये भटप्रकाशिका में जैसे लिखा है उसी प्रकार-भावार्थ यहां लिखा जाता है, जिस समय प्राणियों की आयु, यश, वीर्य्य आदि की वृद्धि होती है उस काल को "उत्सर्पिणी" काल कहते हैं और जिस ससय प्राणियों के आयु वीर्य्य आदि का ह्रास होता है, उसे 'अपसर्पिणी' काल कहते हैं। युग के पूर्वार्द्ध को उत्सर्पिणी और अपरार्द्ध को अपसर्पिणी कहते हैं। युग के मध्यम त्र्यंश को सम काल कहते हैं। आदि और अन्त को (सुषमा) दुष्षमा त्र्यंश कहते हैं, इन सब को "इन्दूच्चात् प्रभृति प्रतिपत्तव्यम्" इस वाक्य से क्या अभिप्रेत है सो नहीं ज्ञात होता और न इस पूरे सूत्र से गणित में प्रयोजन जान पड़ता है ॥ ९ ॥

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः॥ १० ॥

इह वर्तमानेऽष्टाविंशे चतुर्युगे चतुर्भागत्रय षष्ट्यब्दानां षष्टिश्च यदा गता भवन्ति। तदा मम जन्मनः प्रभृति त्र्यधिका विंशतिरब्दा गता भवन्ति। वर्तमानयुगचतुर्थपादस्य षट्छताधिकसहस्रत्रयसम्मितेषु सूर्याब्देषु गतेषु सत्सु त्रयोविंशतिवर्षेण मया शास्त्रमिदं प्रणीतमित्युक्तं भवति। अत्राह प्रकाशिकाकारः। अस्यायमभिप्रायः। अस्मिन् काले गीतिकोक्तभगणैस्त्रैराशिकेनानीता ग्रहमध्यमोच्चपातास्स्फुटास्स्युः। इत उत्तरं तथानीतेषु तेषु सम्प्रदायसिद्धस्संस्कारः कार्यः। इति। तथाच तच्छिष्यो लल्लाचार्यः।

"शाके नखाब्धिरहिते शशिनोऽक्षदस्रै—
स्तत्तुङ्गतः कृतशिवैस्तमसष्षडङ्कैः।
शैलाब्धिभिस्सुरगुरोर्गुणिते सितोच्चा—
च्छोध्यं त्रिपञ्चकुहतेऽम्बरशैलभक्ते॥
स्तम्बेरमाम्बुधिहते क्षितिनन्दनस्य—
सूर्यात्मजस्यगुणितेऽम्बरलोचनैश्च।

व्योमाग्निवेदनिहते विदधीत लब्धम् ।
शीतांशुसूनुकुजमन्दकलासु वृद्धिम् ॥" धीवृद्धिदतन्त्रे ।

इति । अभ्रशराब्धितुल्यस्सर्वेषां हारकः कुजशनिशशीघ्रकलासु वृद्धिर्योज्यं शेषकलाभ्यश्शोध्यम् । एष संस्कारश्शकाब्दाख्यान्नातीव भिन्नः । अत्र शकाब्दाच्चन्द्रयमाब्धिशोधनं युक्तं तदनुक्तम् । नखाब्धिशोधनं यदुक्तं तदुक्तिस्सौकर्यायेति वेद्यमिति प्रकाशिकाकारेणोक्तम् । अयनसंस्कारश्च प्रदर्शितः ।

"कल्यब्दात् खखषट्कृतिहीनाद्वसुशून्यनागशरभक्तात् ।
शेषे द्विबाणशक्रैः पदं भुजाब्दा द्विसंगुणिताः ॥
शशिसूर्यहृता लब्धं भागादिफलं भुजाफलवत् ।
ऋणधनमयनध्रुवयोः कुर्यात्ते दृक्समे भवतः ॥"

इति । पदप्रदेशेषु द्विबाणशक्राब्देषु गतभाग ओज पदे भुजाब्दः । युग्मपदे त्वेष्यो भुजाब्दः । भुजाफलवत् । मेषादावृणं तुलादौ धनमित्यर्थः । अयनद्वयगध्रुवयो राशित्रये राशिनवके चर्णधनञ्चेत्यर्थः । तथाभूतेऽर्केऽयनावसानमित्युक्तं भवति । युगाद्यारम्भकालसाम्यं कालस्यानन्त्यञ्च प्रदर्शयति ।

भा०:—इस वर्त्तमान अट्ठाईसवीं चौयुगी के चतुर्थ भाग में से तीसरे भाग के ६० वर्ष बीतने पर मेरा (आर्य्यभटका) जन्म हुआ । और मेरे जन्म काल से २३ वर्ष बीते हैं । वर्त्तमान युग के चतुर्थ पाद के ३६०० सौर वर्ष बीतने पर मेरी २३ वर्ष की उमर हुई—इसी समय मैं ने इस ग्रन्थ को रचा । इस पर प्रकाशिकाकार ने लिखा है कि इस गीतिकोक्त भगण द्वारा त्रैराशिक से लाये हुए—ग्रहमध्य उच्च, पात, और स्फुट होते हैं । इस के उसप्रकार लाने पर सम्प्रदाय सिद्धसंस्कार करना चाहिये ॥१०॥

युगवर्षमासदिवसास्समं प्रवृत्तास्तु चैत्रशुक्लादेः । कालो ऽयमनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे ॥ ११ ॥

सर्वेषां मण्डलान्तर्गतत्वाद्युगादौ सौरचान्द्रादीनां युगपत्प्रवृत्तिः ॥ अनाद्यन्तः कालः क्षेत्रे गोले स्थितैर्ग्रहैर्भैरप्यनुमीयते । एतदुक्तं भवति । यद्यप्यनाद्यन्तः कालस्तथापि ज्योतिश्चक्रस्थैरुपाधिभूतैः कल्पमन्वन्तरयुगवर्षमासदिवसादिरूपेण परिच्छिद्यत इति । ग्रहाणां समगतित्वमाह ।

भा०:—आकाशमण्डल में सब ही सौर, चान्द्र, आदि की एक साथ युग की आदि में प्रवृत्ति हुई । अनाद्यन्त,काल, गोल में स्थितग्रहों और नक्षत्रों

द्वारा भी अनुमान होता है। यह कहा जाता है कि यद्यपि अनाद्यन्त काल है तथापि ज्योतिश्चक्रस्य उपाधिभूत द्वारा कल्प, मन्वन्तर, युग, वर्ष, मास, दिवस, आदि रूप से परिच्छिन्न है ॥११॥

षष्ट्या सूर्याब्दानां प्रपूरयन्ति ग्रहा भपरिणाहम् ।
दिव्येन नभःपरिधिं समं भ्रमन्तस्स्वकक्ष्यासु ॥ १२ ॥

सूर्याब्दानां षष्ट्या सर्वे ग्रहा भपरिणाहं नक्षत्रमण्डलं पूरयन्ति । तावता कालेन तत्तुल्ययोजनानि गच्छन्तीत्यर्थः । दिव्येन नभःपरिधिम् । दिव्येन युगेन ग्रहसामान्ययुक्तेन चतुर्युगेन नभःपरिधिमाकाशकक्ष्यां परिपूरयन्ति। तत्तुल्यानि योजनानि गच्छन्तीत्यर्थः । समं भ्रमन्तस्स्वकक्ष्यासु । सर्वे ग्रहा दिने-दिने तुल्य योजनानि स्वकक्ष्यायां भ्रमन्तस्सन्त एवं भपरिणाहं नभःपरिधिञ्च पूरयन्ति ॥ समगतीनां मन्दशीघ्रगतित्वं कक्ष्याभेदाद्भवतीत्याह ।

भा०:—६० सौर वर्ष में सब ग्रह नक्षत्रमण्डल को पूरा भ्रमण करते हैं अर्थात् इतने समय में उसके तुल्य योजन चलते हैं। दिव्ययुग द्वारा अर्थात् चतुर्युग करके आकाश कक्ष्या को पूरा करते हैं। अर्थात् उसके तुल्य योजन जाते हैं। सब ग्रह दिन २ तुल्य योजन अपनी २ कक्षा में परिभ्रमण करते २ इस प्रकार आकाश कक्षा को पूरा करते हैं ॥ १२ ॥

मण्डलमल्पमधस्तात् कालेनाल्पेन पूरयति चन्द्रः ।
उपरिष्टात्सर्वेषां महच्च महता शनैश्चारी ॥ १३ ॥

सर्वेषां ग्रहाणामधस्ताद्गच्छंश्चन्द्रस्स्वमण्डलमल्पयोजनमल्पेन कालेन पूरयति । अन्यग्रहमण्डलापेक्षया मण्डलाल्पत्वम् । अन्यग्रहमण्डलपूरणापेक्षया कालस्याल्पत्वञ्च । सर्वेषां ग्रहाणामुपरिष्टाद्गच्छञ्छनैश्चरस्स्वमण्डलं महदधिकयोजनं महता कालेन पूरयति ॥ राशिभागादिलेशानां प्रमाणं तत्तन्मण्डलानुसारेणेत्यत आह ।

भा०:—सब ग्रहों के नीचे चलता हुआ चन्द्रमा थोड़े समय में अल्प योजन पूरा करता है, अन्य ग्रहों की अपेक्षा इसका मण्डल छोटा होने से मण्डल को पूरा करने में थोड़ा समय लगता है। सब ग्रहों के ऊपर चलता हुआ शनैश्चर अपने बड़े मण्डल के अधिक योजन के अधिक काल में पूरा करता है ॥१३॥

अल्पे हि मण्डलेऽल्पा महति महान्तश्च राशयो ज्ञेयाः ।
अंशाः कलास्तथैवं विभागतुल्यास्स्वकक्ष्यासु ॥ १४ ॥

अल्पक्षेत्रे मण्डले राश्यादयोऽल्पक्षेत्राः। महति मण्डले राश्यादयो महान्तः। स्वकक्ष्यासु विभागतुल्याः। स्वकक्ष्यायाः द्वादशांशतुल्यो राशिः। राशिक्षेत्रत्रिंशांशतुल्यक्षेत्रो भागः। तथा कलादयः। एवं स्वकक्ष्यासु प्रकल्पितविभागतुल्या राश्यादयः। नक्षत्रमण्डलादधोगतानां ग्रहकक्ष्याणां क्रममाह।

भा०:-अल्प क्षेत्र में मण्डल में राशि आदि अल्पक्षेत्र होते हैं। बड़े मण्डल में राशि आदि बड़ी होती है। अपनी कक्षा में विभाग तुल्य २ होते हैं। अपनी २ कक्षा के १२ वां अंश एक राशि के तुल्य होताहै। राशि क्षेत्र ३० अंश के तुल्य है। एवं अपनी २ कक्षा में प्रकल्पित विभाग तुल्य राशि आदि हैं ॥१४॥

भानामधश्शनैश्चरसुरगुरुभौमार्कशुक्रबुधचन्द्राः।
तेषामधश्च भूमिर्मेधीभूता खमध्यस्था॥ १५ ॥

नक्षत्रकक्ष्यावस्थितानां भानामधः क्रमेण शनैश्चरादयस्स्वकक्ष्यायां चरन्ति। तेषां ग्रहाणामधस्स्थिता भूमिः खमध्यस्था। आकाशमध्ये तिष्ठति। तेषां ग्रहाणां मेधीभूता भूमिः। मेधी नाम खलमध्ये स्थितो धान्यमर्दकानां बलीवर्दकादीनां बन्धनार्थं स्थापितस्स्थूलशंकुः। यथा बलीवर्दमहिषादयस्तं शंकुम् मध्यं कृत्वा तस्य परितो भ्रमन्ति। तथा भानि ग्रहाश्च खमध्ये स्थितां भूमिं मध्यं कृत्वा तस्याः परितो भ्रमन्ति। इत्यर्थः। अत्र निरक्षदेशमङ्गीकृत्योर्ध्वाधोविभागः कृतः। ग्रहाणां मेधीभूताया भूमेः परितो भ्रमणन्तु मेरुमध्यमङ्गीकृत्य। उक्तेन कक्ष्याक्रमेणैव कालहोराधिपत्यं दिनादिपत्यञ्च प्रदर्शयति।

भा०:-नक्षत्रकक्षा अवस्थित नक्षत्रों के नीचे क्रम से शनिचर, वृहस्पति, मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, अपनी ९ कक्षा में चलते हैं, इन ग्रहों के नीचे भूमि आकाश में है। इन ग्रहों के मेधीभूत भूमि है। जिस प्रकार कृषक (किशान लोग) लोग धान्य आदि को दमन करने के लिये एक काष्ठ वा बांश का बड़ा लग्गा पृथिवी में गाड़ कर उस में दश वीस वा जितनी इच्छा हो बैलों को बांध देते हैं-और बैल सब उसी मेधी वा मेहा को मध्यस्थ करके घूमते हैं, उसी प्रकार इस पृथिवी को मेधी मान कर उस के चारो ओर नक्षत्रादि और सब ग्रह भ्रमण करते हैं ॥ १५ ॥

सप्तैते होरेशाश्शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्राः।
शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्योदयाद्दिनपाः ॥ १६ ॥

सप्ताश्शनैश्चरादयो यथाक्रमं शीघ्राः शीघ्रगतयो भवन्ति। कक्ष्याक्रमेण-

तत्सिध्यति । एवं यथाक्रमं शीघ्रास्सन्त एते शनैश्चरादयो यथाक्रमं होरेशा: कालहोरेशा भवन्ति । वाराधिपस्य प्रथमहोरा । पुनस्तस्मादुक्तक्रमेण रात्री वाराधिपपञ्चमस्य प्रथमहोरा । पुनस्तस्मादुक्तक्रमेण । इत्यर्थः । उक्ताच्छीघ्रक्रमाच्चतुर्थास्सूर्योदयमारभ्य दिनपा भवन्ति । शनैश्चरवारादुत्तरवार उक्तक्रमेण शनैश्चराच्चतुर्थोऽर्को वाराधिपः । तत उपरिगतवारेऽर्काच्चतुर्थश्चन्द्रो वाराधिपः । एवं परेऽप्युक्तक्रमेण चतुर्थचतुर्थास्सूर्योदयमारभ्य वाराधिपा भवन्ति । मध्यग्रहस्य दृग्वैषम्यात्तत्स्फुटीकरणमारभ्यते । तत्र दृग्वैषम्यकारणं प्रदर्शयति ।

भा०:—उक्त शनैश्चर आदि यथा क्रम से शीघ्र गति वाले होते हैं । कक्षा क्रम से यह सिद्ध होता है । एवं यथा क्रम से शीघ्र होने से ये शनैश्चर आदि यथा क्रम से ' होरेश , एवं काल होरेश होते हैं । वाराधिप की प्रथम होरा, पुनः उससे उक्त क्रम से रात्रि में वाराधिप पञ्चम की प्रथम होरा होती है । पुनः उससे क्रम से उक्त शीघ्र क्रम से सूर्य्योदय आरम्भ करके चतुर्थ दिनपति होता है । शनैश्चरवार से उत्तर वार उक्त क्रम से शनैश्चर से चतुर्थ सूर्य्य वाराधिप होता है । उससे उपरिगति वार में सूर्य्य से चौथा चन्द्रमा वाराधिप हुआ । इस प्रकार पर में भी उक्त क्रम से चतुर्थ २ सूर्य्योदय से लेकर वाराधिप होते हैं ॥ १६ ॥

कक्ष्याप्रतिमण्डलगा भ्रमन्ति सर्वे ग्रहास्स्वचारेण ।
मन्दोच्चादनुलोमं प्रतिलोमञ्चैव शीघ्रोच्चात् ॥ १७ ॥

स्फुट एक एव ग्रहो भवति । तस्य विषमगतित्वात् तद्गतिसिद्धये समगतिर्मध्यमाख्यो ग्रहः पृथक् कल्प्यते । तत्र भूमध्यकेन्द्रे कक्ष्याख्यमण्डले मध्यग्रहस्सदा स्वचारेण मध्यमगत्या भ्रमति गच्छति । स्फुटग्रहस्तु भूमध्यातिक्रान्तकेन्द्रे प्रतिमण्डलाख्ये मण्डले स्वचारेण मध्यमगत्यैव भ्रमति गच्छति । अथवा स्वचारेण कक्ष्यामण्डलगतो मध्यमग्रहो मध्यमगत्या दृग्विषये चरति । प्रतिमण्डलगतस्स्फुटग्रहस्स्वचारेण स्फुटगत्या दृग्विषये चरति । इति योजना । मन्दोच्चादनुलोमम् । यत्र-यत्र मन्दोच्चमवतिष्ठते तत्तत्स्थानादनुलोमं दिने-दिने केन्द्रभुक्त्या गच्छति । यत्र-यत्र शीघ्रोच्चमवतिष्ठते तत्तत्स्थानात्प्रतिदिनं स्वशीघ्रगत्यन्तरेण तुल्यकेन्द्रगत्या प्रतिलोमं गच्छति । प्रतिमण्डलप्रमाणं तत्स्थानञ्चाह ।

भा०:—स्फुट एक ही ग्रह होता है । उसकी विषम गतित्व से उस गति की सिद्धि वा निश्चय के लिये " समगति „ मध्यम नाम से ग्रह की

पृथक् कल्पना कियी जाती है। उसमें भूमध्य केन्द्र पर कक्षाख्य मण्डल में मध्यमग्रह सदा अपनी मध्यमगति से चलता है। स्फुट ग्रह तो भूमध्य केन्द्र को अतिक्रम (नांघ कर) कर प्रति मण्डल वा वृत्ताभास में अपनी गति से भ्रमण करता है। अथवा अपनी गति से कक्षामण्डलगत मध्यग्रह मध्यगति से दृग्विषय में (देखने में) चलता है। ऐसी योजना है। जहां २ मन्दोच्च रहता है उस २ स्थान से अनुलोम (सीधी या सम) गति से दिन २ केन्द्र भुक्ति से चलता है। और जहां २ शीघ्रोच्च ठहरता है। उस २ स्थान से प्रति दिन स्व शीघ्र गत्यन्तर से तुल्य केन्द्र गति से प्रति लोम (विषम) गति से चलता है॥ १७॥

कक्ष्यामण्डलतुल्यंस्वं-स्वं प्रतिमण्डलं भवत्येषाम्।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं घनभूमध्यादतिक्रान्तम्॥ १८॥

कक्ष्यामण्डलं हि सर्वेषामाकाशकक्ष्यातस्स्वभगणैर्लब्धं स्यात्। प्रदर्शितञ्च तत् खयुगांशे ग्रहजव इति। (दशगीतिकायाम् ४)। स्वं-स्वं प्रतिमण्डलमपि स्वस्वकक्ष्यामण्डलतुल्यं भवति। कक्ष्यामण्डलस्य मध्यं घनभूमध्ये भवति। भूमेरन्तर्गतो यो मध्यभागस्तत्रेत्यर्थः। प्रतिमण्डलस्य मध्यन्तु तस्माद्घनभूमध्यादतिक्रान्तं भवति। घनभूमध्यादुच्चनीचवृत्तव्यासार्धतुल्यान्तरे। इत्यर्थः। तद्वक्ष्यति च। प्रतिमण्डल भूमध्ययोरन्तरालप्रमाणं मध्यस्फुटयोरन्तरालप्रमाणञ्चाह।

भा०:—कक्षामण्डल सब ग्रहों का आकाशकक्षा से अपने २ भगणों द्वारा ज्ञात होता है। अपना २ प्रति मण्डल भी अपने २ कक्षामण्डल के तुल्य होता है। कक्षामण्डल के मध्य में घनभूत, मध्य में होता है अर्थात् जहां भूमि के अन्तर्गत जो मध्य भाग हो वहां प्रतिमण्डल का मध्यभाग तो घनभूमध्य से अति क्रान्त होता है। अर्थात् घनभूमध्य से उच्च नीच वृत्त व्यासार्द्ध तुल्य अन्तर पर होता है॥ १८॥

प्रतिमण्डलभूविवरं व्यासार्धं स्वोच्चनीचवृत्तस्य।
वृत्तपरिधौ ग्रहास्ते मध्यमचारं भ्रमन्त्येव॥ १९॥

गीतिकासु यन्मन्दवृत्तमुक्तं तन्मन्दकर्मण्युच्चनीचवृत्तं स्यात्। तत्रोक्तं शीघ्रवृत्तं शीघ्रकर्मण्युच्चनीचवृत्तं स्यात्। तस्य स्वोच्चनीचवृत्तस्य व्यासार्धं प्रतिमण्डलभूमध्ययोरन्तरालमपि भवति। गीतिकोक्तवृत्तानि ज्याकर्णक्षेत्रसाधितानि। अतो भूमध्यं केन्द्रं कृत्वा त्रिज्याव्यासार्धेन कक्ष्यामण्डलमालिख्य तन्मध्यात्स्वो-

च्चनीचवृत्तव्यासार्धान्तरे केन्द्रं कृत्वा त्रिज्यातुल्यव्यासार्धेन वृत्तमालिखेत्। तत्प्रतिमण्डलं भवति। प्रतिमण्डले व्योम्नि दृश्यमानस्साक्षाद्ग्रहश्चरति। कल्पितो मध्यमग्रहकक्ष्यामण्डले चरति। कक्ष्यामण्डले यत्र मध्यमग्रहोऽवतिष्ठते तत्र केन्द्रं कृत्वा स्ववृत्तव्यासार्धेन स्वोच्चनीचवृत्तमालिखेत्। तस्य परिधौ ग्रहा मध्यमचारं भ्रमन्ति। मध्यमास्तस्मिन्वृत्ते मध्यमगत्या भ्रमन्ति चरन्ति। उच्चानि तस्मिन्स्वगत्या चरन्ति। इत्यर्थः। तस्मिन्वृत्ते उच्चमध्यमयोरन्तरालभवा भुजज्यायत्प्रमाणा तत्प्रमाणा व्यासार्धमण्डले मध्यमस्फुटयोरन्तरालभुजज्या भवति। क्षेत्रमानेनात्र तुल्यता नतु लिप्तादिसंख्यया। उच्चनीचवृत्ते मध्यमोच्चानां चारं प्रकल्प्य मध्यमोच्चयोरन्तरालभवभुजाज्यातुल्यं मध्यमस्फुटयोरन्तरालमिति प्रकल्प्यम्। इत्यर्थः। गीतिकोक्तवृत्तानां (दशगीतिकायाम् ८।) कार्धापवर्तितत्वात्परिलेखनकर्मणि त्रिज्या कार्धापवर्तिता ग्राह्या स्यात्। तत्र भ्रमणप्रकारमाह।

भा०ः—गीतिकाओं में जो मन्दवृत्त कहा है वह मन्दकर्म में उच्च, नीच, वृत्त है। वहां का कहां शीघ्रवृत्त शीघ्रकर्म में उच्च, नीच, वृत्त में हो। उसके स्वोच्च नीच वृत्त का व्यासार्द्ध प्रतिमण्डल और भूमण्डल के बीच का भी होता है। गीतिकोक्त वृत्त सब व्याकर्ण क्षेत्र साधित है। अतएव भूमध्य के केन्द्र करके त्रिज्याव्यासार्द्ध द्वारा कक्षामण्डल लिखकर उसके बीच से स्वोच्च नीच वृत्त व्यासार्द्धान्तर पर केन्द्र करके त्रिज्या तुल्य व्यासार्द्ध द्वारा वृत्त लिखे। वह प्रति मण्डल होगा। प्रतिमण्डल में आकाश में दृश्यमान साक्षात् ग्रह चलता है। कल्पित मध्य ग्रह कक्षा मण्डल में चलता है। कक्षामण्डल में जहां मध्यमग्रह रहता है, वहां केन्द्र मानकर स्ववृत्त व्यासार्द्ध द्वारा स्वोच्च नीच वृत्त लिखे। उस के परिधि में मध्यमगति से ग्रह सब चलते दीखेंगे। और उच्च सब उसमें अपनी गति से चलते दीखपड़ेंगे ॥ १९ ॥

यश्शीघ्रगतिस्स्वोच्चात् प्रतिलोमगतिस्स्ववृत्तकक्ष्यायाम्। अनुलोमगतिर्वृत्ते मन्दगतिर्यो ग्रहो भ्रमति ॥ २० ॥

यो ग्रहस्स्वोच्चाच्छीघ्रगतिर्भवति स्वस्वनीचोच्चवृत्ताख्यकक्ष्यायां प्रतिलोमगतिर्भ्रमति। तत्र जाता गतिः प्रतिलोमेति कल्प्या। मध्यमादधोगतस्य स्फुटस्य मध्यमस्य चान्तरं तत्र जाता गतिभुजेत्यर्थः। यो ग्रहस्स्वोच्चान्मन्दगतिर्भवति स स्ववृत्तेऽनुलोमं गच्छति। तस्मिन्वृत्ते जाता गतिभुजानुलोमेति कल्प्या। तत्र मध्यादुपरि स्फुटो भवतीत्यर्थः। अत्रोच्चादूर्ध्वगतराशिषट्कस्थो ग्रहश्शी-

घ्रगतिरित्युच्यते । अधोगतराशिषट्कस्थो मन्दगतिरिति च । इति द्रष्टव्यम् । मध्यमात्स्फुटस्य प्रतिलोमानुलोमगतित्वमुक्तम् । उच्चनीचवृत्तस्य भ्रमणप्रकारं तन्मध्यावस्थानञ्चाह ।

. भा०:—जो ग्रह अपने उच्च से शीघ्रगतिवाला होता है, वह अपने २ नीचोच्च वृत्त नामक कक्षा में प्रतिलोमगति से भ्रमण करता है। उससे उत्पन्न गति प्रातिलोम करके कल्पना करनी चाहिये । मध्यम से नीचे का स्फुट और मध्यम के अन्तर से उत्पन्न गति 'भुजा, कहलाती है। जो ग्रह अपने उच्च से मन्दगति होता है-वह अपने वृत्त में अनुलोम चलता है। उस वृत्त में उत्पन्न गति का नाम 'भुजानुलोम, है। वहां मध्य से' उपरिस्फुट होता है। यहां उच्च से उर्ध्वगति छः राशिस्थग्रह 'शीघ्रगति' कहा जाता है। अधोगत छः राशिस्थ ग्रह 'मन्दगति, कहा जाता है। मध्यम से स्फुट का प्रतिलोम, अनुलोम गति होना कहा गया ॥ २० ॥

अनुलोमगानि मन्दाच्छीघ्रात्प्रतिलोमगानि वृत्तानि।
कक्ष्यामण्डललग्नस्स्ववृत्तमध्ये ग्रहो मध्यः ॥ २१ ॥

कक्ष्यामण्डले यत्र मध्यमग्रहस्तत्र केन्द्रं कृत्वा स्ववृत्तपरिलेखनं कार्यमित्यर्थः ॥ एवमुच्चवशात् स्फुटगतिः प्रतिदिनं भिन्ना । ततस्स्फुटगतिसिद्ध्यर्थं स्फुटकर्म क्रियते । तत्रैकोच्चयोस्सूर्येन्द्वोरेकमेव स्फुटकर्म । द्व्युच्चानां कुजादीना स्फुटकर्मणी द्वे भवतः। तत्र तेषां स्फुटकर्मद्वये कृतेऽपि कदापि दृग्भेदस्सम्भवति । मन्द शीघ्रयोः कक्ष्यामण्डलभेदात् प्रतिमण्डलभेदाच्च संभवति। तद्दृग्भेदव्युदासार्थमेवं क्रियते। कुजगुरुशनीनां प्रथमं मध्यान्मन्दफलमानीय तन्मध्यमे कृत्वा तस्माच्छीघ्रफलञ्चानीय तदर्धं तस्मिन्नेव कृत्वा तस्मान्मन्दफलं, सकलं केवलमध्ये कृत्वा तस्माच्छीघ्रफलञ्च सकलं तस्मिन्नेव क्रियते ।•स स्फुटो ग्रहः । बुधशुक्रयोस्तु प्रथमं मध्यमाच्छीघ्रफलमानीय तदर्धं मन्दोच्चे व्यस्तं कृत्वा तन्मन्दोच्चं मध्यमाद्विशोध्य मन्दफलमानीय तत्सकलं मध्यमे कृत्वा तस्माच्छीघ्रफलञ्च सकलं तस्मिन्नेव क्रियते ।•स स्फुटस्स्यात्। इति । एतत्सर्वमार्यात्रयेण प्रदर्शयति। तत्र प्रथमं मन्दशीघ्रयोर्ऋणधनविभागमार्यार्धेनोक्त्वा सार्धेनार्याद्वयेन स्फुटक्रमञ्चाह ।

भा०:—कक्षामण्डल में जहां मध्यग्रह रहता है वहां केन्द्र मानकर स्ववृत्त लिखे। एवं उच्च वशतः स्फुटगति• प्रतिदिन भिन्न २ होती है। उससे स्फुटगति के निश्चयार्थ स्फुट कर्म्म होता है। उसमें एक उच्च वाले सूर्य्य और

चन्द्रमा का एक ही स्फुटकर्म्म होता है। और दो उच्च (शीघ्र-मन्द) वाले मङ्गल आदि के दो स्फुटकर्म्म होते हैं। उसमें उन के दो स्फुटकर्म्म करने पर भी कभी दृग्भेद सम्भव होता है। मन्द और शीघ्र के कक्षामण्डल भेद से एवं प्रतिमण्डल के भेद से सम्भव होता है। सो दृग्भेद के परित्याग (व्युदास) के लिये किया जाता है। मङ्गल, बृहस्पति, शनि, पहिले मध्य से मन्द फल लाकर उसको मध्यम करके और उस से शीघ्र लाकर उसका आधा उसी में करके उससे मन्दफल सब केवल मध्य में करके उससे शीघ्रफल सब उसी में आजाता है। वह स्फुटग्रह होता है। बुध और शुक्र का तो पहिले मध्यम से शीघ्र फल लाकर उसके आधे को मन्दोच्च में व्यस्त कर और उससे शीघ्र फल सब उसमें किया जाता है। वही स्फुट होता है ॥ २१ ॥

ऋणधनधनक्षयास्स्युर्मन्दोच्चाद्व्यत्ययेन शीघ्रोच्चात्।

मन्दोच्चात्। मन्दोच्चहीनान्मध्यमादित्यर्थः। तस्मादुत्पन्ना जीवा पदक्रमेण ऋणधनधनक्षयास्स्युः। व्यत्ययेन शीघ्रोच्चात्। मध्यमहीनाच्छीघ्रोच्चादुत्पन्ना जीवा व्यत्ययेन धनर्णर्णधनास्स्युरित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। प्रथमपदे मन्दभुजायाः क्रमज्याफलमृणं भवति। द्वितीयपदे कोटया उत्क्रमज्याफलम्। तृतीयपदगतसम्पूर्णभुजाफलसंस्कृते ऋणं भवति। शीघ्रे तु धनर्णव्यत्ययेन भवति। इति। मान्द्ये मेषादौ भुजाफलमृणं तुलादौ धनम्। शैघ्रे तूच्चान्मध्यमस्य शोधन विधानान्मेषादौ धनं तुलादावृणमित्येवार्थः।

भा०:—मध्यमहीन उत्पन्न जीवा पद क्रम से ऋण और धन मन्दोच्च से धन और ऋण होता है। मध्यम हीन शीघ्रोच्च से उत्पन्न जीवा विपरीत भाव से धन और ऋण, ऋण और धन होता है। इस का आशय यह है कि प्रथम पद में मन्दभुजा की क्रमज्याफल ऋण होता है। द्वितीय पद में कोटी द्वारा उत्क्रमज्या फल होता है। तृतीय पदगत सम्पूर्ण भुजफलसंस्कृत में ऋण होता है। शीघ्र में तो धन ऋण विपरीत भाव से होता है। मान्द्यकर्म में मेषादि में भुजाफल ऋण, तुलादि में धन होता है। शैघ्र्य में तो उच्च से मध्यम का शोधन विधान मेषादि में धन होता है, तुलादि में ऋण होता है ॥

शनिगुरुकुजेषु मन्दादर्धमृणधनं भवति पूर्वे ॥ २२ ॥
मन्दोच्चाच्छीघ्रोच्चादर्धमृणधनं ग्रहेषु मन्देषु।
मन्दोच्चात्स्फुटमध्याश्शीघ्रोच्चाच्च स्फुटा ज्ञेयाः ॥ २३ ॥

शनिगुरुकुजेषु मन्दोच्चात् सिद्धान्मन्दान्मन्दभुजाफलादर्धं मेषादावृणं तुलादौ धनञ्च भवति। पूर्वं स्फुटकर्मण्येवमित्यर्थः। मन्दोच्चहीनान्मध्यमात्सिद्धान्मन्दफलादर्धं मध्यम ऋणं धनं वा यथाविधि कार्यमित्युक्तं भवति ॥ शीघ्रोच्चादर्धमृणधनं ग्रहेषु मन्देषु। शीघ्रोच्चान्मन्दफलार्धसंस्कृतमध्यहीनादुत्पन्नशीघ्रभुजाफलादर्धमृणं धनं वा यथाविधि मन्देषु ग्रहेषु मन्दफलार्धसंस्कृतेषु शनिगुरुकुजानां मध्यमेषु कुर्यात्। मन्दोच्चात्स्फुटमध्याः। मन्दोच्चात् मन्दोच्चसिद्धमन्दफलसंस्कारादित्यर्थः। मन्दफलार्धशीघ्रफलार्धाभ्यां संस्कृतान्मध्यमान्मन्दोच्चं विशोध्य तस्मादुत्पन्नेन मन्दफलेन कृत्स्नेन संस्कृतः केवलमध्यः स्फुटमध्यमाख्यो भवति। एवं शनिगुरुकुजानां स्फुटमध्या भवन्ति। शीघ्रोच्चाच्च स्फुटा ज्ञेयाः। शीघ्रोच्चात्स्फुटमध्यमहीनादुत्पन्नेन शीघ्रफलेन कृत्स्नेन संस्कृतस्स्फुटमध्यस्स्फुटग्रहो भवति। एवं शनिगुरुकुजानां स्फुटा ज्ञेयाः ॥

भा०:—शनि, गुरु, मङ्गल में मन्दोच्च से सिद्ध मन्द से मन्दभुजाफलार्द्ध मेषादि में ऋण और तुलादि में धन होता है। पूर्व ही स्फुटकर्म में मध्यम से मन्दफल से आधा मध्यम ऋण या धन यथाविधि करना चाहिये। आशय यह है कि शीघ्रोच्च से अर्द्ध ऋण, धन ग्रहों में मन्द में शीघ्रोच्च से मन्द फलार्द्ध संस्कृत मध्य हीन से उत्पन्न शीघ्र भुजाफल अर्द्ध ऋण या धन यथाविधि मन्द ग्रहों में मन्दफलार्द्ध संस्कृत में शनि, गुरु, मङ्गल के मध्य करना चाहिये। मन्दोच्च सिद्ध मन्दफल संस्कारादि। मन्दफलार्द्ध शीघ्रफलार्द्ध द्वारा संस्कृत मध्य से मन्दोच्च को घटा कर उस से उत्पन्न कृत्स्न मन्दफल द्वारा संस्कृत केवल मध्य स्फुट मध्य नामक होता है। एवं शनि, गुरु, मङ्गल, का स्फुट मध्य होता है। शीघ्रोच्च से स्फुट मध्य घटाकर, जो उत्पन्न सम्पूर्ण शीघ्रफल, उसके द्वारा संस्कृत स्फुट ग्रह होता है ॥ २२। २३ ॥

शीघ्रोच्चादर्धोनं कर्तव्यमृणंधनंस्वमन्दोच्चे।
स्फुटमध्यौ तु भृगुबुधौ सिद्धान्मन्दात्स्फुटौ भवतः ॥२४॥

भृगुबुधयोस्तु शीघ्रोच्चान्मध्यमहीनादुत्पन्नं शीघ्रफलमर्धोनं स्वमन्दोच्चे मेषादावृणं तुलादौ धनञ्च कार्यम्। शीघ्रविधिव्यत्ययेनेत्यर्थः। स्फुटमध्यौ तु भृगुबुधौ सिद्धान्मन्दात्। एवंसिद्धान्मन्दान्मन्दोच्चाद्यन्मन्दफलं तेन सकलेन संस्कृतौ भृगुबुधमध्यमौ स्फुटमध्याख्यौ भवतः। शीघ्रफलार्धसंस्कृतं मन्दोच्चं मध्यमाद्विशोध्य तस्मादुत्पन्नमन्दफलेन सकलेन संस्कृतो मध्यस्फुटो भवति। फ-

लानयनप्रकारस्तु । मन्दकेन्द्रभुजाज्यां मन्दस्फुटवृत्तेन निहत्याशीत्या विभज्य लब्धस्य चापं मन्दफलं भवति । तथा शीघ्रकेन्द्रभुजज्यां शीघ्रस्फुटवृत्तेन निहत्याशीत्या विभज्य लब्धं व्यासार्धेन निहत्य शीघ्रकर्णेन विभज्य लब्धस्य चापं शीघ्रफलं भवति । कर्णस्तु तत्तत्केन्द्रादुत्पन्नभुजज्यां, कोटिज्यां च स्ववृत्तेन निहत्याशीत्या विभजेत् । तत्र लब्धे भुजाकोटिफले भवतः । कोटिफलं मृगादौ व्यासार्धे निक्षिप्य कर्क्यादौ कोटिफलं व्यासार्धाद्विशोध्य वर्गीकृत्य तस्मिन् भुजाफलवर्गं प्रक्षिप्य मूलीकुर्यात्। सकर्णो भवति। एवं सकृत्कृत एव शीघ्रकर्णस्स्फुटस्स्यात् । मन्दकर्णस्तु विशेषितस्स्फुटो भवति । तत्प्रकारस्तु । प्रमथसिद्धं कर्णं भुजाकोटि फलाभ्यां निहत्य व्यासार्धेन विभजेत् तत्र लब्धे भुजाकोटिफले कर्णसिद्धे भवतः । पुनस्ताभ्यां व्यासार्धेन पूर्ववत् कर्णमानयेत् । तमपि कर्णं प्रथममशीत्या लब्धाभ्यां भुजाकोटिफलाभ्यामेव निहत्य व्यासार्धेन विभज्य भुजाफलं कोटिफलञ्चानीय ताभ्यां कर्णं साधयेत् । एवं तावत्कुर्यात् यावदविशेषकर्णलब्धिः । अविशिष्टो मन्दकर्णस्स्फुटो भवति । वृत्तकर्म तु । भुजाज्यामोजयुग्मपदवृत्तयोरन्तरेण निहत्य व्यासार्धेन विभज्य लब्धमोजपदवृत्ते धनमृणं कुर्यात् । ओजवृत्तेऽन्यस्मान्न्यूने धनम्। अधिके ऋणम् । तत् स्फुटवृत्तं भवति । एतत्सर्वं कक्ष्याप्रतिमण्डलगा इत्यादिभिः प्रदर्शितमेवेति भावः ॥

"स्फुटविधियुक्तिस्सिध्येन्नैव विना छेद्यकेन विहगानाम् ।
तस्मादिह संक्षेपाच्छेद्यककर्म प्रदर्श्यते तेषाम् ॥
त्रिज्याकृतं कुमध्यं कक्ष्यावृत्तं भवेत्तु तच्छैघ्रम् ।
शीघ्रदिशि तस्य केन्द्रं शीघ्रान्त्यफलान्तरे पुनः केन्द्रम् ॥
कृत्वा विलिखेद्वृत्तं शीघ्रप्रतिमण्डलाख्यमुदितमिदम् ।
इदमेव भवेन्मान्दे कक्ष्यावृत्तं पुनस्तु तत्केन्द्रात् ॥
केन्द्रं कृत्वा मन्दान्त्यफलान्तरे वृत्तमपि च मन्ददिशि ।
कुर्यात्प्रतिमण्डलमिदमुदितं मान्दं शनीड्यभूपुत्राः ।
मान्दप्रतिमण्डलगास्तत्कक्ष्यायां तु यत्र लक्ष्यन्ते ।
तत्र हि तेषां मन्दस्फुटाः प्रदिष्टास्तथैव शैघ्रे ते ।
प्रतिमण्डले स्थितास्स्युस्ते लक्ष्यन्ते पुनस्तु शैघ्राख्ये ।
कक्ष्यावृत्ते यस्मिन् भागे तत्र स्फुटग्रहास्ते स्युः ॥
एवं सिध्यति तत्र स्फुट युग्मं तत्र भवति दृग्भेदः ।
यत्र खगा लक्ष्यन्ते तत्रस्था लक्षिता यतोऽन्यस्मिन् ॥"

क्रियतेऽत्र तन्निमित्तं मध्ये मान्दार्धमपिच शैघ्रार्धम् ।
शैघ्रं मान्दं मान्दं शैघ्रञ्चेति क्रमस्स्मृतोऽन्यत्र ॥
मान्दं कदयावृत्तं प्रथमं बुधशुक्रयोः कुमध्यं स्यात् ।
तत्केन्द्रान्मन्ददिशि मन्दान्त्यफलान्तरे तु मध्यं स्यात् ॥
मान्दप्रतिमण्डलस्य तस्मिन्यत्र स्थितो रविस्तत्र ।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं शैघ्रस्य तस्य मानमपिच गदितम् ॥
शीघ्रस्ववृत्ततुल्यं तस्मिंश्चरतस्सदा ज्ञशुक्रौ च ।
स्फुटयुक्तिः प्राग्वत्स्याद्‌दृग्भेदः पूर्ववद्वेदिह च ॥
क्रियतेऽत्र तन्निमित्तं शैघ्रार्धं व्यत्ययेन मन्दोच्चे ।
तत्सिद्धं मान्दं प्राक् पश्चाच्छैघ्रञ्च सूरिभिः पूर्वैः ॥

इति ॥ भूताराग्रहविवरानयनायाह ।

भा०:—शुक्र और बुध का तो मध्यम हीन शुक्रोच्च से उत्पन्न शीघ्रफल अर्द्धांन को स्वमन्दोच्च मेषादि में ऋण और तुलादि में धन करना चाहिये अर्थात् शीघ्रोच्च के नियम के उलटा इस प्रकार सिद्ध मन्दोच्च से जो मन्दफल उन सब के साथ संस्कृतशुक्र और बुध (मध्यम) स्फुट मध्य होते हैं। शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत मन्दोच्च को मध्यम घटाकर उससे उत्पन्न मन्दफल सब के साथ संस्कृतमध्य स्फुट होता है। फलानयन प्रकार तो मन्दकेन्द्र भुजा की ज्या को मन्दस्फुट वृत्त के साथ गुणनकर ८० से भाग देवे, भागफल चापीय मन्दफल होगा। उसी प्रकार शीघ्रकेन्द्र भुजज्या को शीघ्रस्फुट वृत्त के साथ गुणनकर, गुणनफल में ८० का भाग देवे, भागफल शीघ्रफल होगा। कर्ण तो उस २ केन्द्र से उत्पन्न भुजज्या को एवं कोटीज्या को स्ववृत्त से गुणनकर ८० का भाग देवे भागलब्ध भुजाफल और कोटीफल होंगे। कोटीफल को सिंह (राशि) आदि में व्यासार्द्ध में मिलाकर, कर्कट (राशि) आदि में कोटीफल को व्यासार्द्ध से घटाकर, वर्गकर उसमें भुजावर्गफल को मिलाकर मूल करे तो कर्ण होगा। एवं एक बार करने ही से शीघ्रकर्ण स्फुट होता है। मन्दकर्ण तो विशेषित स्फुट होता है। उस प्रकार प्रथम सिद्धकर्ण को भुजा कोटी द्वारा गुणन कर व्यासार्द्ध में भाग देवे, भागफल भुजाफल, कोटीफल कर्ण सिद्ध होते हैं। पुनः उन दोनों से व्यासार्द्ध से पूर्ववत् कर्ण लावे। उस कर्ण को भी ८० द्वारा भाग देने पर लब्धि भुजाफल और कोटीफल ९ से गुणन कर व्यासार्द्ध से भाग देकर भुजाफल और कोटीफल को लाकर उनसे वर्ग का

धन करे। यह क्रिया उस समय तक करे जब तक अविशेष कर्ण लब्ध न हो अवशिष्ट मन्दकर्ण स्फुट होगा। वृत्तकर्म तो भुजज्या को ओजपद और युग्मपद के वृत्त के अन्तर से गुणन कर व्यासार्द्ध से भाग देवे, भागफल ओज पद वृत्त में धन को ऋण करे। ओजपद वृत्त में धन को ऋण करे। और ओजवृत्त में अन्य से न्यून द्वारा धन और अधिक में ऋण। वह स्फुट वृत्त होता है ॥ २४ ॥

भूताराग्रहविवरं व्यासार्धहृतस्स्वकर्णसंवर्गः।
कक्ष्यायां ग्रहवेगो यो भवति स मन्दनीचोच्चे ॥२५॥

अन्त्योपान्त्यस्फुटकर्मसिद्धयोश्शीघ्रकर्णमन्दकर्णयोस्संवर्गो व्यासार्धहृतो भूताराग्रहविवरं भवति। भूमेस्ताराग्रहणाञ्चान्तरालं कलात्मकमित्युक्तं भवति। ताराग्रहाणां विक्षेपानयने भूताराग्रहविवरं भागहारो भवति। तत्र स्वपातोनभुजज्यां स्वपरमविक्षिप्त्या निहत्य स्वेन भूताराग्रहविवरेण विभजेत्। तत्र लब्धं स्वविक्षेपो भवति। तत्रास्य विनियोगः कक्ष्यायामिति। अत्र प्रकाशिकाकारः। भूताराग्रहविवरव्यासार्धविरचितायां कक्ष्यायां यो ग्रहस्य जवस्स मन्दनीचोच्चे भवति। तावत्प्रमाणायां कक्ष्यायां ग्रहो मन्दस्फुटगत्या गच्छतीत्यर्थः। इत्याह। अस्मात् किन्त्वेतन्नोपपन्नमिति प्रतिभाति। अथवा योजना। कक्ष्यावृत्ते स्फुटग्रहस्य मध्यादधि भवति। एवं शीघ्रेऽपीति। अथवा कक्ष्यायां गच्छतो ग्रहस्य प्रतिमण्डलतो बहिरन्तर्वा यावती परमा गतिस्तावत्प्रमाणव्यासार्धं मन्दनीचोच्चवृत्तं भवति। एवं शीघ्रेऽपीति ॥

भा०:—तारा और ग्रहों के विक्षेप लाने में भूतारा ग्रह विवर भाग हार होता है। उसमें अपने पात से ऊन भुजज्या को स्वपरम विक्षिप्ति से अन्तर गुणन कर अपने भूतारा ग्रह से भाग देवे भागफल स्वविक्षेप होता है। कक्षा वृत्त में स्फुट ग्रह का मध्य से होता है। एवं शीघ्र में भी अथवा कक्षा में चले ग्रह का प्रति मण्डल से बाहर या भीतर जितनी परमागति होती है उतने परिमाण व्यासार्द्ध मन्दनीचोच्च वृत्त होता है। इसी प्रकार शीघ्र में भी जानना ॥ २५ ॥

इति पारमेश्वरिकायां भटदीपिकायां कालक्रियापादस्तृतीयः।

——○:*:○:*:○——

अथ गोलपाद आरभ्यते । तत्रापमण्डलसंस्थानमाह ।

मेषादेः कन्यान्तं सममुदगपमण्डलार्धमपयातम् ।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव ॥१॥

मेषादिकन्यान्तैं राशिभिरुपलक्षितमपमण्डलस्यार्धमुदगपयातम् । तौल्यादिमीनान्तै राशिभिरुपलक्षितं शेषार्धं दक्षिणेनापयातम् । सममपयातम् । एतदुक्तं भवति । मेषादेः क्रमेण कन्यादेरुत्क्रमेण च सममपयाति । मेषसमं कन्याया अपयानम् । वृषसमं सिंहस्य । इत्यादि । अपयानं हि मण्डलस्य क्रमेण भवति । तथा तुलासमं मीनस्यापयानम् । वृश्चिकसमं कुम्भस्य । इत्यादि । मेषादेः कन्यान्ताच्च त्रिराश्यन्तरे परमापयानं भवति । चतुर्विंशतिभागाः परमापयानम् । भापक्रमो ग्रहांशा इति गीतिकासूक्तं तत् (श्लो० ३) अत्र मेषादिकन्यान्तशब्दौ पूर्वस्वस्तिकापरस्वस्तिकयोर्गतराशिभागयोर्वाचकौ । अतो यदा धनात्मका अयनसंस्कारभागाः पञ्चदश भवन्ति तदा मीनमध्यं पूर्वस्वस्तिकगतं कन्यामध्यमपरस्वस्तिकगतम् । तदा मीनमध्यात् कन्यामध्यान्तमर्धमुदगपयातं शेषमर्धं दक्षिणतोऽपयातम् । यदा ऋणात्मकाः पञ्चदशभागा अयनाख्यास्स्युस्तदा मेषमध्यं पूर्वस्वस्तिकगतं तुलामध्यमपरस्वस्तिकगतम् । तदा मेषमध्यात्तुलामध्यान्तमर्धमुदगपयातं शेषमर्धं दक्षिणतोऽपयातम् । इति वेद्यम् । अतएव मेषादितः प्रवृत्तेष्वपक्रमानयनायनसंस्कारः क्रियते ॥ अथापक्रममण्डलचारिण आह ।

भा०;—मेष राशि से कन्या तक अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, अपमण्डल का आधा भाग उत्तर की ओर चलता है । और तुला से मीन राशि तक अर्थात् तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन तक अपमण्डल दक्षिण की ओर चलता है । सम अपयान का अर्थ यह है कि मेष राशि के तुल्य कन्या का अपयान, (चलना) वृष के तुल्य सिंह का, मिथुन के तुल्य । मेष राशि से कन्या राशि पर्य्यन्त तीन २ राशि अन्तर पर परमापयान होता है । चौवीस २४ भाग परमापयान होता है । यहां मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, इन छः राशियों को अर्थात् राशि चक्र के आधे भाग को "पूर्वस्वस्तिक" कहते हैं । और तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन छः राशियों को अर्थात् राशिचक्र के अपरार्द्ध को "अपरस्वस्तिक" कहते हैं । इस लिये जब धनात्मक अयन संस्कार १५ भाग होता है तो मीन मध्य 'पूर्वस्वस्तिक, गत और कन्या मध्य अपरस्वस्तिगत होता है । तब मीन मध्य से कन्या मध्यान्तर्गत आधा मण्डल उत्तर को चलता है और शेषार्द्ध दक्षिण को चलता है । जब ऋणात्मक १५ भाग अयन नाम होता है । तब मेष मध्य पूर्व

स्वस्तिकगत एवं तुल्य मध्य अपरस्वस्तिकगत होता है। तब मेष के मध्य से तुला मध्यान्त—आधा उत्तर अपयान होता है और शेषार्द्ध दक्षिण से अपयान होता है। इसलिये मेष की आदि से अपक्रम लाने का संस्कार होता है ॥ १ ॥

तारग्रहेन्दुपाता भ्रमन्त्यजस्रमपमण्डलेऽर्कश्च ।
अर्काच्च मण्डलार्धे भ्रमति हि तस्मिन् क्षितिच्छाया ॥ २ ॥

ताराग्रहाणां पाताश्चेन्दुपातश्चार्कश्च सदापमण्डले भ्रमन्ति। अर्कान्मण्डलार्धेऽपमण्डले भूच्छाया सदा भ्रमति। शशिकुजादयश्च स्वे-स्वे विक्षेपमण्डले चरन्ति॥ विक्षेपमण्डलस्य संस्थानमाह।

भा०:—तारा, ग्रह, चन्द्रमा, इनके पात और सूर्य्य सदा अपमण्डल में भ्रमण करते हैं। सूर्य्य से मण्डल के आधे अपमण्डल में भूच्छाया सदा भ्रमण करती है। चन्द्रमा, मङ्गल आदि अपने २ विक्षेपमण्डल में चलते हैं॥ २॥

अपमण्डलस्य चन्द्रः पाताद्यात्युत्तरेण दक्षिणतः ।
गुरुकुजकोणाश्चैवं शीघ्रोच्चेनापि बुधशुक्रौ ॥ ३ ॥

स्फुटचन्द्रो यदापमण्डलस्यपातसमो भवति तदा चन्द्रोऽपमण्डले चरति। ततः क्रमेणोत्तरेण याति। पातात्त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमुद्गमनम्। पातात् षड्राश्यन्तरे स्थितश्चन्द्रोऽपमण्डले चरति। तत्र हि द्वितीयपातस्य स्थितिरुक्ता। तस्माद्द्वितीयपातात् क्रमेण दक्षिणतो याति। तत्रापि पातात्त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमं दक्षिणायनम्। एवं चन्द्राधारस्य विक्षेपमण्डलस्य संस्थानमुदितम्। परमविक्षेपस्तु कार्धमित्युक्तं(दशगीतिकायाम् ८।) सार्धाश्चत्वारोंऽशा इत्यर्थः॥ गुरुकुजकोणाश्चैवम्। यथा मन्दस्फुटसिद्धश्चन्द्रस्स्वपातसमोऽपमण्डले चरति तथा गुरुकुजकोणाश्च स्वमन्दस्फुटे पातसमेऽपमण्डले चरन्ति। ततः क्रमेणोत्तरेण यान्ति। पातात्त्रिराश्यन्तरे मन्दस्फुटे परमविक्षेपसमुद्गमनम्। पातात् षड्राश्यन्तरे मन्दस्फुटेऽपमण्डले चरन्ति। ततः क्रमेण दक्षिणतो यान्ति। तत्रापि त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमं दक्षिणगमनम्। एवं गुरुकुजमन्दानामाधारभूतस्य विक्षेपमण्डलस्य संस्थानम्। शीघ्रोच्चेनापि बुधशुक्रौ। स्वशीघ्रोच्चेनाप्यपमण्डलादुदग्दक्षिणतश्च चरतो बुधशुक्रौ। अपिशब्दान्मन्दस्फुटवशाच्च। एतदुक्तं भवति। बुधशुक्रयोस्स्वमन्दफलं स्वशीघ्रोच्चे व्यस्तं कृत्वा तस्मात्स्वपातं विशोध्य विक्षेपस्साध्य इति। अतो मन्दफलसंस्कृते शीघ्रोच्चे स्वपातसमेऽपमण्डले चरतः। ततः क्रमेणोदग्यातः। पातात्त्रिराश्यन्तरे शीघ्रोच्चे परमविक्षेपस-

समुद्गगमनं षड्राश्यन्तरेऽपमण्डले चरतः। तस्मात् क्रमेण दक्षिणतश्चरतः। तत्रापि त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमं दक्षिणगमनम्। इति। एवं सर्वेषां विक्षेपमण्डलमपमण्डले स्वपातद्वयभागयोर्बद्धं ताभ्यां त्रिराश्यन्तरे उदग्दक्षिणतश्चापमण्डलात्परमविक्षेपान्तमितं भवति। परमविक्षेपस्तु शनिगुरुकुज खकगार्धं भृगुबुध ख इत्युक्तम्। (दशगीतिकायाम् ६।) केचिदाचार्या गुरुकुजशनीनां शीघ्रोच्चफलं स्वपातेऽपि ग्रहवत् कृत्वा तथाकृतं स्वपातं स्फुटग्रहाद्विशोध्य विक्षेपानयनं कुर्वन्ति बुधशुक्रयोस्तु स्वमन्दफलं स्वपाते कृत्वा तं पातं शीघ्रोच्चाद्विशोध्य विक्षेपं कुर्वन्ति। तथाच लल्लाचार्यः।

"क्षितिसुतगुरुसूर्यसूनुपाताः स्वचलफलेन युता यथा तथैव।
शशिसुतसितयोः स्वपातभागाः स्वमृदुफलेन च संस्कृताः स्फुटाः स्युः॥"

इति। अस्मिन् पक्षे कुजगुरुशनीनां स्फुटग्रहात्पातोनम्। इन्द्वादीनामर्कविप्रकर्षसन्निकर्षकृतोदयास्तमयस्य परिज्ञानमाह।

भा०:—स्फुट चन्द्रमा जब अपमण्डलस्थ पात सम होता है। तब क्रम से उत्तर ओर होकर जाता है। पात से तीन राशि के अन्तर पर परमविक्षेप सम-उत्तर गमन करता है। पात से ६ राशि के अन्तर पर स्थित चन्द्रमा अपमण्डल में चलता है। उसी स्थान में दूसरे पात का सम्भव होता है। इस लिये उसकी स्थिति कही गयी। उस दूसरे पात से क्रमशः दक्षिण करके जाता है। वहां भी पात से तीन राशि के अन्तर पर परमविक्षेप सम दक्षिणायन होता है। एवं चन्द्राधार विक्षेपमण्डल का संस्थान कहा है। और परम विक्षेप ४ अंश ३० कला है (पा० ३। गी० ८) जिन राशियों का सम अपयान होता उनको निम्न लिखित चक्र द्वारा दिखलाया जाता है:——

समअपयानचक्र॥

जिन दो राशियो में सम अपयान होता।		जिन दो राशियों में सम अपयान होता।	
राशि के	तुल्य	राशि के	तुल्य
मेष	कन्या	तुला	मीन
वृष	सिंह	वृश्चिक	कुम्भ
मिथुन	कर्कट	धनु	मकर
कर्कट	मिथुन	मकर	धनु
सिंह	वृष	कुम्भ	वृश्चिक
कन्या	मेष	मीन	तुला

यह चक्र इसी पाद के दूसरी गी० के आशय से बना है।

भा०:—जिस प्रकार मन्दस्फुट चन्द्रमा स्वपात सम अपमण्डल में चलता है उसी प्रकार गुरु, कुज, और कोण स्वमन्दस्फुट पात सम अपमण्डल में चलते हैं। तब क्रमशः उत्तर होकर जाता है। पात से तीन राशि के अन्तर पर मन्दस्फुट में परमविक्षेपसम उत्तर गमन करता है। पात से ६ राशि के अन्तर पर मन्दस्फुट अपमण्डल में चलते हैं। तब क्रम से दक्षिण से जाते हैं। वहां भी तीन राशि के अन्तर पर परम विक्षेप सम दक्षिण को जाता है। एवं गुरु, कुज, मन्द के आविर्भूत विक्षेपमण्डल का संस्थान है बुध और शुक्र के स्वमन्दफल को अपने शीघ्रोच्च में व्यस्त (उलटा) करके उससे अपने पात को घटाकर विक्षेप साधे। इसलिये मन्दफल संस्कृत शीघ्रोच्च स्वपात सम अपमण्डल में चलते हैं ; तब क्रम से उत्तर जाते हुए पात से तीन राशि के अन्तर पर शीघ्रोच्च में परम विक्षेपसम उत्तर गमन छः राशि अन्तर पर अपमण्डल में चलने से। तब क्रम से दक्षिण जाते हुए वहां भी राशि के अन्तर पर परमविक्षेप सम दक्षिण गमन करता है। इसीप्रकार सब का विक्षेपमण्डल अपमण्डल में स्वपात के दोनों भाग में बन्धा उन दोनों से तीन राशि के अन्तर पर उत्तर दक्षिण करके अपमण्डल से परम विक्षेपान्तमित होता है ॥ ३ ॥

चन्द्रोऽशैर्द्वादशभिरविक्षिप्तोऽर्कान्तरस्थितैर्दृश्यः ।
नवभिर्भृगुर्भृगोस्तैर्द्व्यधिकैर्द्व्यधिकैर्यथाश्लक्ष्णाः ॥४॥

अविक्षिप्तो मृगाङ्कस्स्वार्कान्तरस्थितैर्द्वादशभिरंशैर्दृश्यः। (नवभिर्भृगुः। नवभिः कालांशैर्भृगुर्दृश्यः)। नवभिर्विनाडिकाभिरित्यर्थः। भृगोरुक्तैस्तैर्द्व्यधिकैर्गुरुर्दृश्यः। एकादशभिः कालभागैरित्यर्थः। तैर्द्व्यधिकैर्बुधो दृश्यः। त्रयोदशभिः कालभागैरित्यर्थः। तैर्द्व्यधिकैश्शनिर्दृश्यः। पञ्चदशभिः कालभागैरित्यर्थः। तैर्द्व्यधिकैः कुजोदृश्यः सप्तदशभिः कालभागैरित्यर्थः। यथाश्लक्ष्णाः। यथासूक्ष्मा इत्यर्थः। शुक्राद्गुरुस्सूक्ष्मः। ततो बुधः। ततो मन्दः। ततः कुजः। गुरुबुधशनिभौमाश्शशिङञगानमांशका इति (दशगीतिकायाम् ५।) अस्यार्थः श्लोक्तः। विक्षिप्ते ग्रहे तु दर्शनसंस्कारयुतग्रहसूर्ययोरन्तरालगतैरंशैर्यथोक्तसंख्यैर्दृश्यो भवति। स्वतोऽप्रकाशस्य भूम्यादेः प्रकाशहेतुमाह।

भा०:—सूर्य्य से १२ अंश दूर पर चन्द्रमा दृश्य होता है, ९ नौ काल अर्थात् विनाडिका से शुक्र दृश्य होता है, गुरु ११ कालांश, बुध १३ काल

शनि १५ कालांश, मङ्गल १७ कालांश पर दृश्य होते हैं। जो २ ग्रह जैसे २ सूक्ष्म होते हैं। वह २ ग्रह वैसे २ अधिक कालांश पर दीख पड़ते हैं। शुक्र से गुरु सूक्ष्म, पुनः बुध, तब शनैश्चर, फिर मङ्गल है ॥ ४ ॥

भूग्रहभानां गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्धानि यथासारं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते ॥५॥

भूमेश्चन्द्रादीनां ग्रहाणां भानामश्विन्यादितारकाणामितरतारकाणाञ्च गोलार्धानि सर्वतोवृत्तानां स्वशरीराणामर्धानि स्वच्छायया विवर्णानि स्वभावसिद्धेन रूपेण विवर्णानि। अप्रकाशात्मकानि। अथवा स्वच्छायया स्वशरीरेणार्ककरव्यवधानादुत्पन्ना या छाया तमोरूपा तया विवर्णानीति। सूर्याभिमुखान्यन्यान्यर्धानि यथासारं दीप्यन्ते। अल्पशरीरा अल्परूपा दीप्यन्ते महाशरीरा महारूपा दीप्यन्ते इत्यर्थः। चन्द्रस्य चार्धं सदा प्रकाशवद्भवति। अमावास्यायां चन्द्रस्योर्ध्वार्धं प्रकाशवद्भवति। तस्मादस्माभिस्तदर्धमदृश्यं भवति। प्रतिपदादिषु क्रमेण सितभागोऽधो लम्बते। पूर्णायामधोऽर्धं सर्वं सितं भवति। तस्मादस्माभिर्दृश्यमर्धं सितं भवति। बुधशुक्रावर्कादधःस्थावपि तयोस्सूर्यासत्त्या सूर्यबिम्बस्य महत्त्वाच्च सदा सितमेव तयोर्बिम्बं भवति। कक्ष्यासंस्थानं भूसंस्थानञ्चाह।

भा०:-पृथिवी, चन्द्रमा, एवं अन्यान्य ग्रह, अश्विनी आदि तारागण के गोलार्द्ध अर्थात् आधा भाग-अपने शरीर का आधा भाग अपनी छाया से (सूर्य्य के प्रकाश के कारण) अप्रकाशात्मक होता है। और शेषार्द्ध इनके सूर्य्य के सम्मुख होने से प्रकाशित होते हैं। अल्प शरीर वाले अल्प रूप से, बड़े शरीर वाले बड़े रूप से प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमा का आधा भाग सदा प्रकाशवान् होता है ॥ ५ ॥

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलस्सर्वतोवृत्तः ॥६॥

भपञ्जरो नक्षत्रकक्ष्या। वृत्ताकारनक्षत्रकक्ष्याया मध्ये भूर्भवति। कक्ष्यापरिवेष्टितः। चन्द्रार्कादिग्रहाणां कक्ष्यामध्यगत इत्यर्थः। खमध्यगतः। ब्रह्माण्डकटाहावच्छिन्नस्याकाशस्य मध्यगतः। मृज्जलशिखिवाय्वात्मकः सर्वतोवृत्तश्च भूगोलो भूमिर्भवति। भानामध इत्यादिसिद्धस्य भूसंस्थानस्य पुनर्वचनं प्राणिसंचारप्रदर्शनार्थं विशेषतया एवंभूतायां भुवि सर्वत्र प्राणिनस्संचरन्तीति प्रदर्शनार्थं तत्प्राणि संचारं प्रदर्शयति ॥

भा०:—वृत्ताकार नक्षत्र कक्षा में पृथिवी है, चन्द्रमा, सूर्य्य आदि ग्रह कक्षा से परिवेष्टित आकाश के बीच जिस प्रकार दो कटाह के सम्पुट की नाई अवस्थित है। मृत्तिका, जल, वायु, अग्निमय सब ओर से घिरा हुआ भूगोल अवस्थित है ॥ ६ ॥

यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितस्समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैस्स्थलजैश्च भूगोलः ॥७॥

यथा कदम्बाख्यवृक्षस्य कुसुमग्रन्थिस्समन्ततः सर्वत ऊर्ध्वभागे पार्श्वेषु कुसुमैः प्रचितः। तथा वृत्ताकारो भूगोलश्च जलजैस्सर्वसत्त्वैः स्थलजैस्सर्वसत्त्वैः सर्वतः प्रचितः। भूमौ सर्वत्र स्थावरजङ्गमा नदीतटाकादयश्च भवन्तीत्यर्थः कल्पेन संभूतं भूमेर्वृद्धय पचयमाह।

भा०:—यह भूगोल कदम्ब के फूल के केशर के फैलावसा सब ओर पर्वत आराम, ग्राम, नदी आदि से घिरा हुआ है ॥ ७ ॥

ब्रम्हदिवसेन भूमेरुपरिष्टाद्योजनं भवति वृद्धिः।
दिनतुल्ययैव रात्र्या मृदुपचितायास्तदिह हानिः ॥८॥

ब्रह्मदिवसेन भूमेरुपरिष्टाद्योजनं वृद्धिर्भवति। समन्ताद्योजनं वृद्धिर्भवतीत्यर्थः। दिन तुल्यया रात्र्या ब्रह्मणो रात्र्या मृदोपचिताया भूमेस्तद्धानिर्भवति योजनं हानिर्भवतीत्यर्थः। अतः कल्पादौ पञ्चाशदधिकं योजनसहस्रं भूमेर्विष्कम्भः। अन्तरालेऽनुपातेन कल्प्यः। इत्युक्तं भवति। भूमेः प्राग्गमनं नक्षत्राणां गत्यभावञ्चेच्छन्ति केचित् तन्मिथ्याज्ञानवशादित्याह।

भा०:—एक ब्राह्म दिन में सब ओर से पृथिवी की एक योजन वृद्धि होती है, एवं ब्राह्मरात्रि में पृथिवी की एक योजन हानि होती है। इसलिये कल्प की आदि में पृथिवी का १०५० योजन व्यास होता है ॥ ८ ॥

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥९॥

यथा नौस्थो नौयानं कुर्वन् पुरुषोऽनुलोमगतिस्स्वाभिमतां पश्चिमां दिशं गच्छन्नचलं नद्या उभयपार्श्वगतमचलं वृक्षपर्वतादिवस्तु विलोमगं प्राचीं दिशं गच्छदिव पश्यति तथा भानि नक्षत्राणि लङ्कायां समपश्चिमगानि कर्तृभूतानि अचलानि भूमिगतान्यचलवस्तूनि कर्मभूतानि विलोमगानीव प्राचीं दिशं गच्छन्तीव पश्यन्ति। लङ्कादि विषुवद्देशे स्थेव नक्षत्रपञ्जरस्य समपश्चिमगत्वम्।

[एवं] ताराणां मिथ्याज्ञानवशादुत्पन्नां प्रत्यग्गमनप्रतीतिमङ्गीकृत्य भूमेः प्राग्गतिरभिधीयते। परमार्थतस्तु स्थिरैव भूमिरित्यर्थः। भपञ्जरस्य भ्रमणहेतुमाह।

भा०:—जैसे नौका में बैठा हुआ मनुष्य किनारे की स्थिर वस्तुओं को दूसरी ओर को चलते हुए देखता है, ऐसे ही मनुष्यों को सूर्य्यादि नक्षत्र जो स्थिर हैं, पश्चिम की ओर चलते हुए दीखते हैं और पृथिवी स्थिर मालूम होती है, परन्तु वास्तव में भूमि ही चलती है॥ ९॥

उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुनाक्षिप्तः।
लंकासमपश्चिमगो भपञ्जरस्सग्रहो भ्रमति ॥१०॥

रव्यादीनामुदयास्तमयहेतुभूतो भपञ्जरो नक्षत्रगोलो राशिचक्रात्मकः प्रवहाख्येन वायुना सदा आक्षिप्तो लङ्कायां समपश्चिगो ग्रहैस्सह भ्रमति। मेरुप्रमाणं तत्स्वरूपञ्चाह।

भा०:—सूर्यादि के उदय और अस्त के हेतु भूत भपञ्जर अर्थात् नक्षत्रगोल प्रवह नामक वायु द्वारा सदा आक्षिप्त लङ्का में सम पश्चिम ग्रहों के साथ चलता है॥ १०॥

मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयस्सर्वतोवृत्तः ॥११॥

मेरुर्योजनमात्रोच्छ्रितस्तावद्विस्तृतश्च। सर्वतोवृत्तो रत्नमयत्वात्प्रभाकरश्च प्रभाणामाकरः। हिमवता पर्वतेन परिक्षिप्तो नन्दनवनस्य मध्ये भवति। भूमेरूर्ध्वमधश्च निर्गतो मेरुरित्याह। तथाच मयः। (सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये श्लो० ३२—३४।)

> "मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
> बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥
> तदन्तरपुटास्सप्त नागासुरसमाश्रयाः।
> दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः॥
> अनेकरत्ननिचयो जाम्बुनदमयो गिरिः।
> भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः॥"

इति॥ मेरुवडवामुखाद्यवस्थानप्रदेशमाह।

भा०:—मेरु योजनमात्र ऊंचा है और योजनमात्र विस्तृत है, सब ओर से घिरा हुआ रत्नमय होने से प्रकाशवान् है। हिमवान् पर्वत से परिक्षिप्त नन्दन वन के बीच में अवस्थित है॥ जैसा कि सूर्य्यसिद्धान्त में लिखा है:—ब्रह्मा की

धारणात्मिका परमाशक्ति के ऊपर यह भूगोल अण्ड (ब्रह्माण्ड) के बीच आकाश में भ्रमण करता हुआ अवस्थित है ॥ उस भूगोल के भीतर नाग और असुर आदि मनुष्य विशेष के निवास को ७ पाताल कहते हैं (अतल, वितल सुतल, तल तलातल, रसातल, पाताल, जिन में अनेक प्रकार स्वप्रकाश युक्त रमणीक ओषधि हैं ॥ (सू० सि अ० १२ श्लोक ३२।३४) ॥११॥

स्वर्मेरू स्थलमध्ये नरको बडवामुखश्च जलमध्ये ।
अमरमरा मन्यन्ते परस्परमधस्स्थितान्नियतम् ॥१२॥

मेरुभागगतं भूमेरर्धं भूप्राचुर्यात्स्थलसंज्ञम् । बडवामुखमर्धं जलप्राचुर्याज्जलसंज्ञम् । तत्र स्थलमध्ये मेरुस्स्वर्गश्च भवति । जलमध्ये नरको बडवामुखश्च भवति । अमरास्स्वर्गवासिनः । मरा नरकवासिनः । स्वर्गवासिनोऽस्माकमधस्स्थिता नरकवासिन इति मन्यन्ते । नरकवासिनश्च तथास्माकमधस्स्थतास्स्वर्गवासिन इति मन्यन्ते ।

"उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः ।
अधस्तादसुरास्तद्वद्द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥"

इति । (सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये श्लो० ३५ ।) तस्य मेरोरिति शेषः ।

"ततः समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः ।
मेखलावत् स्थितो धात्र्या देवासुरविभागकृत् ॥"

इति च (तत्रैव श्लो० ३६ ।) ॥ स्थलजलांशयोस्सन्धौ भूमेः परितो भूपरिधिचतुर्थभागान्तरालव्यवस्थिताश्चतस्रो नगरीराह ।

भा०:—मेरु भागगत भूमि का आधा भाग मृतिका की अधिकता से स्थल संज्ञक है। और बड़वामुख शेष आधा भाग जल की अधिकता से नरक संज्ञक है । उस स्थल में मेरु (स्वर्ग) रहता है । जल में बडवामुख (नरक) है । अमर, (स्वर्गवासी) मरा (नरकवासी) स्वर्गवासी गण समझते हैं कि नरकवासी लोग हमारे नीचे रहते हैं एवं नरकवासी गण जानते हैं कि स्वर्गवासी गण हमारे नीचे रहते हैं ॥ १२ ॥

उदयो योलङ्कायां सो ऽस्तमयस्सवितुरेव सिद्धपुरे ।
मध्यान्हो यवकोटयां रोमकविषये ऽर्धरात्रस्स्यात् ॥१३॥

लङ्का दक्षिणादिग्गता । तस्यां य उदयः । यदा सूर्योदय इत्यर्थः । सिद्धपुरे स एवास्तमयः । तदारवेरस्तमयस्स्यादित्यर्थः । सिद्धपुरी नाम नगर्युत्तरदिशि

[स्थि]यतेत्यनेनोक्तं भवति। स एव लङ्कोदयो यवकोट्यां मध्याह्नस्स्यात्। तदा [म]ध्याह्नकाल इत्यर्थः। पूर्वदिशि यवकोटिसंज्ञा नगरीत्यनेनोक्तं भवति। रोम-विषये स एवोदयोऽर्धरात्रस्स्यात्। पश्चिमदिशि स्थिता सा नगरीत्यनेनोक्तं [भव]ति। तथाच मयः (तत्रैव श्लो० ३७–४०।)

"समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यवकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा॥
याम्यायां भारतवर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रतिष्ठिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः॥"

इति॥ रवेस्समन्ताद्भ्रमणात्प्रतिदेशं कालभेदस्य पूर्वादिदिग्विभागोऽत्र [ल]ङ्कामधिकृत्य मेरुस्थानात् कृतः॥ मेरुलङ्कयोर्बडवामुखलङ्कयोश्चान्तरालप्रदेशं [ल]ङ्कोज्जयिन्योरन्तरालप्रदेशञ्चाह।

भा०:—जिस समय लङ्का (दक्षिण दिशा में) में सूर्योदय होता, उस [स]मय सिद्धपुरी (उत्तर दिशा में है) में सूर्यास्त, यव कोटी में मध्यान्ह (पूर्व [दि]शा में है) और रोमक नगर (पश्चिम दिशा में है) में आधीरात होती है॥१३॥

स्थलजलमध्याल्लङ्का भूकक्ष्याया भवेच्चतुर्भागे।
उज्जयिनी लङ्कायास्तच्चतुरंशे समोत्तरतः॥१४॥

स्थलमध्यान्मेरुस्थानात् भूकक्ष्यायाश्चतुर्भागान्तरे लङ्का भवति। तथा जल[म]ध्याद्बडवामुखस्थानाच्च भूकक्ष्यायाश्चतुर्भागान्तरे लङ्का भवति। लङ्कावत्सि-[द्धपु]रयवकोटिरोमकविषयाश्च स्थलजलमध्याद्भूकक्ष्याचतुर्भागे भवन्ति। लङ्का-[या]स्समोत्तरदिशि चतुरंशे। भूकक्ष्याचतुर्भागस्य चतुरंशे। भूकक्ष्यायाष्षोडशांशे। [उज्ज]यिनी नाम नगरी भवति। उज्जयिनी लङ्कायास्समोत्तरदिशि भूकक्ष्यायाः [पञ्च]दशांशे। इति केचिद्वदन्ति। तैरत्रान्तरञ्च प्रदर्शितम्।

"लङ्कोत्तरतोऽवन्ती भूपरिधेः पञ्चदशभागे॥"

[इ]ति ब्रह्मगुप्तः॥ भूपृष्ठस्थितैर्ज्योतिश्चक्रस्य दृश्यमदृश्यञ्च भागमाह।

भा०:—स्थल मध्य से अर्थात् मेरुस्थान से भू कक्षा के चतुर्थ भाग अन्तर

पर लङ्का है। जल स्थान से अर्थात् बड़वा मुख स्थान से चतुर्थ भाग अन्तराल में लङ्का है। लङ्का की नाईं सिद्धपुर, यवकोटी और रोमक भी भूकक्षा के चतुर्थ भाग अन्तराल में है। लङ्का के समान उत्तरदिशा में भूकक्षा के चतुर्थ अंश के चौथे भाग में अर्थात् १६ अंश पर उज्जयिनी नगरी है ॥ १४ ॥

भूव्यासार्धेनोनं दृश्यं देशात्समाद्भगोलार्धम् ।
अर्धं भूमिच्छन्नं भूव्यासार्धाधिकञ्चैव ॥१५॥

समाद्देशात् पर्वतादिव्यवधानरहिताद्भूपृष्ठाद्भगोलार्धं ज्योतिश्चक्रस्योपर्यर्धं भूव्यासार्धेनोनं भूव्यासार्धतुल्यांशहीनं दृश्यं भवति। अपरमर्धं भूव्यासार्धेनाधिकं भूमिच्छन्नमदृश्यं भवति। एतदुक्तं भवति। ज्योतिश्चक्रस्य यदूर्ध्वार्धं तस्य पूर्वभागे भूव्यासार्धतुल्योंऽशोऽस्माभिरदृश्यो भवति भूपृष्ठव्यवधानात्। तथा पश्चिमभागेऽपि भूव्यासार्धतुल्यांशोऽस्माभिरदृश्यो भवति। अतस्ताभ्यामंशाभ्यां हीनमुपर्यर्धं समदेशे भूपृष्ठेऽवस्थितैर्दृश्यं भवति। अपरमर्धं ताभ्यामंशाभ्यां युतं भूमिच्छन्नत्वात् समदेशे भूपृष्ठेऽवस्थितैरदृश्यं भवति ॥ ज्योतिश्चक्रे देवासुर दृश्यभागमाह।

भा०:—सम देश से अर्थात् पर्वत आदि से व्यवधान रहित भूपृष्ठ से भगोलार्द्ध ज्योतिश्चक्र के ऊपर का आधा—भूव्यासार्द्ध से ऊन—अर्थात् भूव्यासार्द्ध तुल्यांश हीन दृश्य होता है। दूसरा आधा भूव्यासार्द्ध से अधिक भूमिछन्न—अदृश्य होता है। आशय यह है कि भूपृष्ठ के व्यवधान से ज्योतिश्चक्र का जो उर्ध्व अर्द्ध भाग है उस के पूर्व भाग में भूव्यासार्द्ध तुल्यांश हम लोगों से अदृश्य होता है। तथा पश्चिमभाग में भूव्यासार्द्ध तुल्यअंश हम लोगों से अदृश्य होता है। इस कारण उन अंशों से हीन ऊपर नीचे देश में भूपृष्ठ में अव स्थित पुरुष से दृश्य होता है। दूसरा अर्द्ध उन अंशों से युक्त भूमि से छिपे होने से समदेश में भूपृष्ठ पर अवस्थित पुरुष से अदृश्य होता है ॥ १५ ॥

देवाः पश्यन्ति भगोलार्धमुदङ्मेरुसंस्थितास्सव्यम् ।
अपसव्यगं तथार्धं दक्षिणबडवामुखे प्रेताः ॥१६॥

उदग्गतमेरुसंस्थिता देवास्सव्यं भगोलार्धं ज्योतिश्चक्राभिमुखस्य लङ्कास्थस्य पुरुषस्य सव्यभागगतं पश्यन्ति। सोदग्गतमर्धमित्यर्थः। दक्षिणभागगतबडवामुखे स्थिताः प्रेता नरकवासिनोऽपसव्यगं दक्षिणभागगतमर्धं पश्यन्ति।

मेषादिगमुदगर्धं देवाः पश्यन्ति। तुलादिगं दक्षिणमर्धं नरकवासिनः पश्यन्ति। इत्यर्थः। केचिदेवं वदन्ति। ज्योतिश्चक्रस्योदगर्धं सव्यं सव्यगं मेरुस्था देवाः पश्यन्ति। दक्षिणमर्धमपसव्यगमसुराः पश्यन्ति। तथाच ब्रह्मगुप्तः।

" सौम्यमपमण्डलार्धं मेषाद्यं सव्यगं सदा देवाः।
पश्यन्ति तुलाद्यर्धं दक्षिणमपसव्यगं दैत्याः॥ "

इति। अत्रैवं योज्यम्। मेरुबडवामुखयोर्ज्योतिश्चक्रवद्भ्रमतां देवासुराणां सव्यगमपसव्यगञ्चेति। अपसव्यगशब्दो हि दक्षिणवाचकः। देवादीनां दिनप्रमाणमाह।

भा०:—मेरुनिवासी (देवगण) ज्योतिश्चक्र के उत्तर गोलार्द्ध को देखते हैं और दक्षिण मेरुनिवासी (प्रेत) असुरगण दक्षिण गोलार्द्ध को देखते हैं। अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, इन छः राशि पर्य्यन्त भगोलार्द्ध को देवगण देखते, उस समय दक्षिण मेरुनिवासी (असुर) तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, राशि पर्य्यन्त दक्षिण गोलार्द्ध को देखते हैं॥ १६॥

रविवर्षार्धं देवाः पश्यन्त्युदितं रविं तथा प्रेताः।
शशिमासार्धं पितरश्शशिगाः कुदिनार्धमिह मनुजाः॥१७

रविवर्षार्धं मेषमासादिकन्यामासान्तं देवास्सदोदितं रविं पश्यन्ति मेषादिकन्यान्तराशीनां मेरुक्षितिजादूर्ध्वगतत्वात् क्षितिजवच्चक्रभ्रमणाच्च। अतो मेषादिमासषट्कं देवानां दिनं भवति। तुलामासादि मीनमासान्तं देवा रविं कदाचिदपि न पश्यन्ति तुलादिराशिषट्कस्य मेरुक्षितिजादधोगतत्वात् क्षितिजानुसारेण चक्रभ्रमणाच्च। अतस्तुलादिमासषट्कं देवानां रात्रिर्भवति। तथा प्रेताः। नरकवासिनश्च तथा रविवर्षार्धं रविं पश्यन्ति। किन्तु तुलामासादि मीनमासान्तं रविं पश्यन्ति। अतस्तदा तेषां दिनं भवति। मेषमासादि मीनमासान्तं रविं कदाचिन्न पश्यन्ति॥ अतस्तदा तेषां रात्रिर्भवति। मेरुबडवामुखयोरूर्ध्वाधोदिशौ व्यत्ययाद्भवतः। अतस्तयोर्दिनरात्री च व्यत्ययेन भवतः॥ मृगादिमासषट्कं देवानां दिनमिति यो व्यवहारस्स तु तत्र वैदिककर्मणां विहितत्वात् कृतः कर्कादिमासषट्के अविहितत्वात्तेषां रात्रिरिति च व्यवहारः कृतः। अत्र वराहमिहिरः।

" मेषवृषमिथुनसंस्थे दिनमर्के कर्कटादिगे रात्रिः।
मेरुस्थितदेवानामिति येरुक्तं नमस्तेभ्यः॥ "

इति ॥ शशिगाश्शशिमण्डलोर्ध्वभागगता पितरश्शशिमासस्य चान्द्रमासस्यार्धं रविं पश्यन्ति । शशिमासस्यापरार्धं न पश्यन्ति । अतः पितॄणां चान्द्रमासार्धं दिनं भवति । तदर्धं रात्रिश्च । अमावास्यायां हि चन्द्रमण्डलादूर्ध्वगतोऽर्को भवति । अतस्तदानीं पितॄणां दिनार्धं भवति । पौर्णमास्यां चन्द्रमण्डलादधोगतोऽर्कः । अतस्तदा पितॄणां रात्र्यर्धं भवति । अष्टम्यर्धयोरुदयास्तमयौ च । कुदिनार्धमिह मनुजाः । मानुजास्सावनदिनस्यार्धं रविं पश्यन्ति । अपरमर्धं न पश्यन्ति । गोलकल्पनामार्याद्वयेनाह ।

भा०ः—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, इन छः मास पर्य्यन्त देवगण सदा सूर्य्य को उदित देखते हैं, इस कारण देवताओं का छः मास का एक दिन होता है। और तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन छः मास पर्य्यन्त देवगण सूर्य्य को नहीं देखते अतएव इन छः मास की उनकी एक रात्रि होती है। और प्रेत या असुरगण तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन छः मास पर्य्यन्त सूर्य्य को सदैव उदित देखते इस लिये असुरों को छः मास का एक दिन होता है। एवं मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, इन छः मास पर्य्यन्त असुरगण सूर्य्य को नहीं देखते इस कारण इतने समय इनकी छः मास की एक रात्रि होती है। और पितृगण (चन्द्रलोकनिवासी) चान्द्र मास के आधे भाग पर्य्यन्त सूर्य्य को देखते हैं अतएव इनका हमारे १५ दिन का एक दिन होता एवं इतने ही (१५) की उनकी एक रात्रि होती है। क्योंकि अमावास्या को चन्द्रमण्डल के उपरले भाग में सूर्य्य दीख पड़ता इस कारण पितृगण को उस समय मध्यान्ह होता है और पौर्णमासी को चन्द्रमण्डल से नीचे सूर्य्य रहता अतएव उस समय पितृगण की आधीरात होती है। और कृष्णपक्ष के अष्टमी को पितृ लोगों का सूर्य्योदय और शुक्लपक्ष की अष्टमी को सूर्य्यास्त होता है। मनुष्यों को सावन दिन के आधा भाग पर्य्यन्त सूर्य्य दीखता एवं अपरार्द्ध नहीं दीखता ॥ १७ ॥

पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरञ्चैव ।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ ॥ १८ ॥

वंशशलाकादिना निर्मितमेकं मण्डलं वृत्तं पूर्वापरमधऊर्ध्वं निदध्यात् । तत् सममण्डलं नाम भवति । तत्प्रमाणमेवापरं मण्डलं दक्षिणोत्तरमधऊर्ध्वं निदध्यात् । तद्दक्षिणोत्तराख्यं भवति । पुनरन्यन्मण्डलं तत्प्रमाणं समपार्श्वस्थं

तिर्यग्गतं दिक्चतुष्टयजनितस्वस्तिकं निदध्यात्। तत् क्षितिजं नाम। तस्मिन् क्षितिजे भानां नक्षत्राणामर्कादिग्रहाणाञ्चोदयास्तमयौ भवतः॥

भा०:—वांस की शलाका आदि से मण्डल (वृत्त) बनावे, उस में पूर्व और पश्चिम भाग को क्रम से नीचे ऊपर रक्खे, वह 'सममण्डल, होगा। उसी के तुल्य दूसरा मण्डल दक्षिण, उत्तर क्रम से नीचेऊपर को रक्खे वह 'दक्षिणोत्तर मण्डल' होगा। पुनः एक तीसरा मण्डल उसी के बराबर तिरछे क्रम से दिक् चतुष्टय जनित स्वस्तिक रक्खे, उसका नाम "क्षितिज, होगा। उस 'क्षितिज' में नक्षत्र ग्रहादिकों का उदय, अस्त का ज्ञान होगा॥ १८॥

पूर्वापरदिग्लग्नं क्षितिजादक्षाग्रयोश्च लग्नं यत्।
उन्मण्डलं भवेत्तत् क्षयवृद्धी यत्र दिवसनिशोः॥१९॥

पूर्वप्रमाणमेवापरं मण्डलं पूर्वापरस्वस्तिकयोस्तिर्यङ्निधायोत्तरस्वस्तिकगतक्षितिजमण्डलादूर्ध्वमक्षाग्रेऽक्षज्यान्तरे दक्षिणोत्तरमण्डले लग्नं यथा भवति। तथा दक्षिणस्वस्तिकगतक्षितिजमण्डलादधश्चाक्षज्यान्तरे दक्षिणोत्तरमण्डले लग्नं यथा भवति तथा निदध्यात्। एतदुन्मण्डलं नाम भवति। दिवसनिशोः क्षयवृद्धी अस्मिन्वेद्ये। एतत् खगोलन्नाम भवति। अस्यान्तर्गतं नक्षत्रगोलमप्यस्ति। तत्संस्थानन्तु। पूर्वापरमधऊर्ध्वं तथा दक्षिणोत्तरमधऊर्ध्वञ्च समपार्श्वस्थं दिक्चतुष्टयजनितस्वस्तिकञ्च बध्नीयात्। एतानि त्रीणि विषुवन्मण्डलानि। तेषु पूर्वापरं घटिकामण्डलाख्यं स्यात्। पुनरपरं मण्डलं पूर्वापरस्वस्तिकयोस्तिर्यङ्निधायाधस्स्वस्तिकादुत्तरत उपरिस्वस्तिकाद्दक्षिणतश्च परमापक्रमतुल्यान्तरे दक्षिणोत्तरशलाकयोर्बध्नीयात् पूर्वापरस्वस्तिकयोश्च बध्नीयात्। एतदपमण्डलं राश्याद्यङ्कितञ्च भवति। पुनर्घटिकामण्डलस्य दक्षिणत उत्तरतश्च स्वेच्छापक्रमान्तरेषु पूर्वापरायतानि तत्तत्स्थानसमानि मण्डलानि बध्नीयात्। तानीष्टस्वाहोरात्रमण्डलानि। पुनश्चाक्षणामृज्वीमयश्शलाकां गोलस्य दक्षिणोत्तरस्वस्तिकद्वयाभिवेधिनीं निधाय तदग्रयोर्द्वे शरदण्डके निश्चले निदध्यात्। पुनस्तद्बहिश्शरदण्डकयोरन्तरालतुल्यव्यासं खगोलं कुर्यात्। पुनः खगोल उन्मण्डलदक्षिणोत्तरमण्डलसंपातद्वये वेधं कृत्वा तयोरयश्शलाकाग्रे प्रवेशयेत्। एवं स्वविषयगोलावस्थितिः। द्रष्टृवशादधऊर्ध्वादिविभागः कार्यः। इत्याह।

भा०:—पूर्व 'अपर, और 'क्षितिज, रेखा के सङ्गम होकर दूसरा एक

वृत्त रचना करे। वह स्वदेशीय अक्षांश परिमित उत्तर और दक्षिण ध्रुव से दूर अवस्थित होगा और इस वृत्त का नाम 'उन्मण्डल, होगा। इसी मण्डल, में सूर्य्य जब दीख पड़ता है उस समय दिन और रात्रि का ह्रास और वृद्धि होती है॥ १९ ॥

पूर्वापरदिग्रेखाधश्चोर्ध्वा दक्षिणोत्तरस्था च।
एतासां संपातो द्रष्टा यस्मिन् भवेद्देशे ॥२०॥

पूर्वापरदिग्गता या रेखा या चाधऊर्ध्वदिग्गता दक्षिणोत्तरदिग्गता च या तासां संयोगो द्रष्टृस्थाने भवति॥ दृङ्मण्डलं दृक्क्षेपमण्डलञ्चाह।

भा०ः—पूर्वापर दिग्गत रेखा जो नीचे ऊपर को गई है, दक्षिणोत्तर दिग्गत है, उस का संयोग स्थान द्रष्टा का स्थान होता है॥ २०॥

ऊर्ध्वमधस्ताद्द्रष्टुर्ज्ञेयं दृङ्मण्डलं ग्रहाभिमुखम्।
दृक्क्षेपमण्डलमपि प्राग्लग्नं स्यात्त्रिराश्यूनम् ॥२१ ॥

ऊर्ध्वाधोगतं द्रष्टृमध्यमिष्टग्रहाभिमुखं दृङ्मण्डलं भवति। पूर्वोक्तमण्डलानि भूमध्यमध्यानि। इदन्तु भूपृष्ठस्थितद्रष्टृमध्यं भवति। त्रिराश्यूनं प्राग्लग्नं दृक्क्षेपमण्डलं भवति। इत्यर्थः। दृङ्मण्डलदृक्क्षेपमण्डलयोर्लम्बनविधावुपयोगः गोलं यन्त्रेण भ्रामयन्ति केचित्। तत्रोपायं प्रदर्शयति।

भा०ः—ऊपर नीचे को गया हुआ द्रष्टा का मध्य इष्टग्रहाभिमुख दृङ्मण्डल होगा। पूर्वोक्त मण्डल सब भूमध्य मध्य है। यह तो भू पृष्ठस्थित द्रष्टा मध्य हुआ। अर्थात् तीन राशि ऊन प्राग् लग्न दृक्क्षेप मण्डल होता है ॥२१॥

काष्ठमयं समवृत्तं समन्ततस्समगुरुं लघुं गोलम्।
पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत्स्वधिया च कालसमम् ॥२२॥

काष्ठमयं वंशादिकाष्ठे निर्मितं न समवृत्तं सर्वतोवृत्तं समन्ततस्समगुरुं सर्वावयवेषु समं गुरुत्वं यथा भवति तथा कृतम्। लघुमगुरुम्। एवंभूतं गोलं कृत्वा पारतादिभिस्तं स्वधिया च कालसमं भ्रमयेत्। अयमर्थः। भूमिष्ठदक्षिणोत्तरस्तम्भयोरुपरि गोलप्रोतायश्शलाकाया अग्रे स्थापयेत्। गोलदक्षिणोत्तरच्छिद्रे च तैलेन सिञ्चेत् यथा निस्सङ्गो गोलो भ्रमति। गोलस्यापरतो, गोलपरिधिसंमितदैर्घ्यं साधश्छिद्रं जलपूर्णं नलकं निदध्यात् ततो गोलस्यापरस्वस्तिके कीलकं निधाय तस्मिन्सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वाधो विषुवन्मण्डलपृष्ठेन प्राङ्मुखं नीत्वा

तत उपर्याकृष्य प्रत्यङ्मुखं तेनैव नीत्वा तदग्रबद्धं पारतपूर्णमलाबु जलपूर्णे नलके निदध्यात् ततो नलकस्याधश्छिद्रं विवृतं कुर्यात् तेन जलं निस्स्रवति। नलकस्थजलमधो गच्छति । तद्वशाच्च तत्रस्थमलाबु पारतपूर्त्या गुरुत्वाज्जलेन सहाधो गच्छद् गोलं प्रत्यङ्मुखमाकर्षति । एवं त्रिंशद्घटिकाभिरर्धसम्मितं यथा जलं भवति गोलस्य चार्धं भ्रमति तथा स्वबुद्ध्या जलनिस्स्रावो योज्यः । इति । गोलोऽयं घटिकायन्त्रात् कालपरिच्छेदसाधनमेव नतु (ज्योतिश्चक्रभ्रमणसाधनम्) ज्योतिश्चक्रे हि समोदितौ गुरुचन्द्रौ प्रतिमुहूर्तं स्थानान्तरितौ दृश्येते । अस्मिन्न तथा दृश्येते । अतो घटिकायन्त्रसमोऽयं गोलः । नतु ज्यतिश्चक्रसमः । क्रान्ति भूज्यार्काग्राशङ्कुशङ्क्वग्रसमशङ्क्वादीनामुपपत्तिज्ञानं हि गोलप्रयोजनम् ॥ अथ ज्योतिश्चक्रस्यैर्ज्यार्धैः क्षेत्रविशेषान् प्रदर्शयिष्यन् क्षेत्रकल्पनाप्रकारमक्षावलम्बकौ चाह ।

भा०:–वंश आदि काष्ठ का बना हुआ सब ओर से बराबर एवं सम गुरु (भारी) वृत्त (हलका और बहुत भारी नहीं) इस प्रकार काष्ठगोल बनाकर पारे से या अपनी बुद्धि से विचार कर किसी अन्य उपयुक्त वस्तु से काल के बराबर भ्रमण करावे । इस का अभिप्राय यह है कि–भूपृष्ठ के दक्षिण उत्तर स्तम्भ के ऊपर गोल प्रोत लोहे के शलाके के आगे में स्थिर करे । गोल के दक्षिणोत्तर छिद्र में तैल से इस प्रकार सींचे जिस से निस्सङ्ग होकर भ्रमण करे। गोल के दूसरी ओर से परिधि सम्मित दीर्घ छिद्र के साथ जल से भरा नलक (नल) रक्खे, तदनन्तर गोल के ऊपर स्वस्तिक पर कीलक गाड़े,–एवं उस सूत्र के एक अग्रभाग को बांध कर, विषुवन्मण्डल पृष्ठ द्वारा प्राङ्मुख लाकर ऊपर को खींच कर उसी से प्रत्यङ्मुख लाकर उस को अग्रभाग को बांधकर, पारे से भरी तुम्बी जल भरे हुए नलक में रक्खे, तब नलक के नीचे के छिद्र को फैलावे–उस से जल गिरता है । और नलक में जल नीचे जाता है, इस कारण वहां की तुम्बी पारे से भरे होने से भारीपन से जल के साथ नीचे जाती हुई गोल को पूर्व की ओर खींचती है । एवं ३० घटिका में आधे भाग गोल जितने जल में से गिरे उतना जल गिरने योग्य अपनी बुद्धि से रक्खे ॥२२॥

दृग्गोलार्धकपाले ज्यार्धेन विकल्पयेद्भगोलार्धम् ।
विषुवज्जीवाक्षभुजा तस्यास्त्ववलम्बकः कोटिः ॥२३॥

दृग्गोलार्धकपाले दृश्ये गोलार्धभागे, ज्यार्धेन तत्र गोलपादनिष्पन्नेन ज्यार्धेनाक्षादिभुजात्मनावलम्बकादिकोटयात्मना च स्थितेन भगोलार्धं विकल्पये-

ज्ज्योतिश्चक्रार्धं विविधं कल्पयेत्। अक्षज्याशङ्कुभूज्याद्याश्रितैर्विविधैः क्षेत्रैर्युक्तं दृश्यं भगोलार्धं कल्पयेदित्यर्थः। सा वक्ष्यमाणाक्षादिषु क्षेत्रकल्पनयोपपत्तिर्ज्ञे-येत्युक्तं भवति। विषुवज्जीवाक्षभुजा। विषुवद्दिनलध्यान्हेऽर्कखमध्ययोरन्तरा-लज्या विषुवज्जीवा भवति। विषुवच्छायेत्यर्थः। साक्षभुजा भवति। अक्षज्येत्यर्थः अवलम्बकस्तस्याः कोटिः। अक्षज्यावर्गहीनत्रिज्यावर्गस्य पदमवलम्बक इत्यर्थः। विषुवन्मध्यान्हेशङ्कुरवलम्बकस्स्यात्। स्वाहोरात्रार्धमाह।

भा०ः—दृश्य गोलार्द्ध भाग में, वहां गोल पाद से उत्पन्न ज्यार्द्ध द्वारा अक्षादि भुजात्मा व लम्बकादि और कोट्यात्मा द्वारा विकल्प से ज्योतिश्चक्रार्द्ध को विविध प्रकार से कल्पना करे। अर्थात् अक्षज्या शङ्कु भूज्यादि आश्रित अनेक क्षेत्र द्वारा 'दृश्य भगोलार्द्ध की रचना करे। आशय यह है कि विषुवद् दिन के मध्याह्न में सूर्य्य और आकाश के बीच की ज्या को विषुवज् जीवा (विषुवच्छाया) कहते हैं। वही अक्षभुजा होती है अर्थात् अक्षज्या होती है। उसकी अवलम्बक कोटि होती है। अर्थात् अक्षज्या वर्ग हीन त्रिज्यावर्ग का पद अवलम्बक होती है ॥ २३ ॥

इष्टापक्रमवर्गं व्यासार्धकृतेर्विशोध्य यन्मूलम्।
विषुवदुदग्दक्षिणतस्तदहोरात्रार्धविष्कम्भः ॥२४॥

इष्टापक्रमज्यावर्गं व्यासार्धवर्गाद्विशोध्य शिष्टस्य मूलं विषुवन्मण्डलस्य घटिकाख्यास्योदग्दक्षिणगतयोस्स्वाहोरात्रमण्डलयोरर्धविष्कम्भो भवति। विष्कम्भार्धमित्यर्थः। क्रान्तिभुजायास्स्वाहोरात्रार्धं कोटिः। व्यासार्धं कर्णः। गोलान्तर्गतमक्षभुजादिकं क्षेत्रं महाभास्करीयव्याख्यायां विस्तरेण प्रदर्शितम्। अतोऽत्र न व्याख्यास्यामः। निरक्षदेशे राश्युदयप्रमाणमाह।

भा०ः—इष्ट अपक्रमज्या वर्ग को व्यासार्द्ध वर्ग से घटाकर अवशिष्ट के मूल को घटिकानामक विषुवन्मण्डल के उत्तर दक्षिण गत स्वाहोरात्रार्द्ध मण्डल का अर्द्ध विष्कम्भ होता है। क्रान्ति भुजा के स्वाहोरात्रार्द्ध कोटि होती है, व्यासार्द्ध कर्ण होता है ॥ २४ ॥

इष्टज्यागुणितमहोरात्रव्यासार्धमेव कांष्ठान्त्यम्।
स्वाहोरात्रार्धहृतफलमजाल्लङ्कोदयप्राग्ज्या ॥ २५ ॥

स्वाहोरात्रव्यासार्धं स्वाहोरात्रार्धं काष्ठान्त्यमपक्रमकाष्ठान्तगतम्। परमापक्रम साधितस्वाहोरात्रार्धम्। सर्वराशिविषयेऽपि परमापक्रमसिद्धस्वाहोरात्रार्धमेव निहन्यते। इत्येवशब्देनोक्तं परमापमसिद्धाहोरात्रार्धे शशिकृतशशिरामतुल्यमि-

ष्टज्ययेष्टभुजज्यया निहत्य तद्भुजज्यासाधितेनेष्टस्वाहोरात्रार्धेन हरेत्। तत्र लब्धमजाल्लङ्कोदयप्राग्ज्या भवति। लङ्कायां तद्भुजाभागगतराश्युदयकालजाता प्राग्ज्या प्रागपरमण्डलज्या। घटिकामण्डलज्येत्यर्थः। सा चापितोदयास्त्वमितिर्भवति। एवं भुजाभागस्योदयप्रमाणानयनम्। प्रतिराशिमानन्तु। इष्टराशेराद्यान्त्यभुजाज्याभ्यां पृथग्राशिमानद्वयमानीय तयोरन्तरं कुर्यात्। तदिष्टराशेर्लङ्कोदयमानं भवति। मेषादितस्तुलादितश्च क्रमेण भुजायाः प्रवृत्तिः। अतस्तत्र राश्युदयाश्च क्रमेण भवन्ति। कन्यान्तान्मीनान्तच्चोत्क्रमेण भुजायाः प्रवृत्तिः। अतस्तत्र राश्युदयाश्चोत्क्रमेण भवन्ति। अत्रैवं त्रैराशिकम्। यदि त्रिज्यया परमापसिद्धस्वाहोरात्रार्धतुल्या कोटिर्लभ्यते तदेष्टज्यया कियतीतीष्टस्वाहोरात्रार्धगतेष्टकोटिलब्धिः। यदीष्टस्वाहोरात्रार्धे इयती कोटिस्तदा व्यासार्धे कियतीति घटिकामण्डलगतराश्युदयज्यालब्धिः। अत्र प्रथमत्रैराशिके व्यासार्धं भागहारः। द्वितीये सगुणकारः तयोर्गुणकारहारयोस्तुल्यत्वात्तदुदयं विना कर्म क्रियते। दिननिशोः क्षयवृद्ध्यानयनमाह।

भा०:—परमापक्रम साधित स्वाहोरात्रार्द्ध को इष्ट भुजज्या से गुणन कर, उस भुजज्या से साधित इष्ट स्वाहोरात्रार्द्ध द्वारा भाग देवे भाग फल मेष राशि से लङ्कोदय प्राग्ज्या होता है ॥ २५ ॥

इष्टापक्रमगुणितामक्षज्यां लम्बकेन हृत्वा या।
स्वाहोरात्रे क्षितिजा क्षयवृद्धिज्या दिननिशोस्सा ॥२६॥

इष्टापक्रमज्ययाक्षज्या निहत्य लम्बके हृत्वा यल्लभ्यते सा स्वाहोरात्रे स्वाहोरात्रमण्डलनिष्पन्ना दिननिशोः क्षयवृद्धिज्या क्षितिजा क्षितिजमण्डलादुत्पन्ना। क्षितिज्येत्यर्थः। अत्रैवं त्रैराशिकम्। यद्यवलम्बककोट्याक्षज्या भुजा तदापक्रमकोट्या का भुजेति ज्यालब्धिः। सा स्वाहोरात्रनिषण्णा। अतस्तां त्रिज्यया निहत्य स्वाहोरात्रेण विभजेत्। तत्र लब्धा चरदलज्या भवति। अत्रैवं त्रैराशिकम्। यदा स्वाहोरात्र इयती ज्या तदा व्यासार्धमण्डले कियतीतिव्यासार्धमण्डलज्यालब्धिः। चरदलाश्चापिताश्चरदलासवो भवन्ति। स्वदेशराश्युदयमाह।

भा०:—इष्टापक्रमज्या से अक्षज्या को गुणनकर लम्बक से भाग दे, भाग फल को स्वाहोरात्रार्द्ध में स्वाहोरात्रमण्डल निष्पन्न दिन रात्र के क्षय वृद्धि ज्याक्षितिजा, क्षितिज मण्डल से उत्पन्न क्षितिज होता है ॥ २६ ॥

उदयंति हि चक्रपादश्चरदलहीनेन दिवसपादेन।
प्रथमोऽन्त्यश्चाथान्यौ तत्सहितेन क्रमोत्क्रमतः ॥२७॥

प्रथमश्चक्रपादो मेषवृषमिथुनाख्यश्चरदलहीनेन दिवसपादेन। चरदलहीनाभिः पञ्चदशघटीभिः । उदयति । अन्त्यश्च मीनघटमृगाख्यस्तथा चरदलहीनाभिः पञ्चदशघटिकाभिरुदयति। अतो मृगादिमिथुनान्तानां षण्णां लङ्कोदयास्तद्राशिभवचरदलासुभिर्हीनास्स्वदेशोदया भवन्ति । अथान्त्यौ तत्सहितेन । कर्कसिंहकन्याख्यस्तुलालिचापाख्यश्च चक्रपादौ चरदलसहितेन दिवसपादेनोदयतः । अतः कर्क्यादिचापान्तानां षण्णां राशीनां लङ्कोदयास्तत्तच्चरदलयुतास्स्वदेशोदया भवन्ति । क्रमोत्क्रमतः । प्रथमपादे प्रथमराशेर्मेषस्य लङ्कोदये प्रथमराशिभवं चरदलं शोध्यम्। वृषस्य द्वितीयस्य लङ्कोदये द्वितीयराशिभवं चरदलं शोध्यम् । तृतीयस्य मिथुनस्य लङ्कोदये तृतीयराशिभवं चरदलं शोध्यम्। द्वितीयपादे तूत्क्रमेण देयम् । कर्कटस्य तृतीयराशिचरदलं देयम्। सिंहस्य द्वितीयराशिचरदलं देयम् । कन्यायाः प्रथमराशिचरदलं देयम् । तृतीयपादे क्रमेण देयम् । चतुर्थपाद उत्क्रमेण शोध्यम् । इत्युक्तं भवति । गोलस्योत्तरोन्नतत्वान्मीनादयश्शीघ्रमुद्यन्ति । अतस्तेषु चरदलं शोध्यम् । तस्मादेव कर्कटादयश्शनैरुद्यन्ति । अतस्तेषु चरदलं देयम् ॥ इष्टकाले शङ्क्वानयनमाह ।

भा०:—प्रथम चक्र पाद अर्थात् मेष, वृष, मिथुन नामक है । चरदल हीन द्वारा दिवसपाद से अर्थात् १५ घटिका करके उदय होता है । और अन्त्य अर्थात् मीन, कुम्भ, मकर, नामक पाद है, सो १५ घटिका करके उदय होता है , इसलिये मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, मिथुन, इन छः राशियों का उदयास्त १५ प्राण हीघटा करके स्वदेशोदय होता है ॥ और कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, क्रम से प्रथम तीन राशि द्वितीय पाद और दूसरा तीन राशि तृतीय पाद है । १५ घटिका जोड़ने से उदय होता है । अतएव कर्कादि धनु पर्य्यन्त छः राशियों का लङ्कोदय उस उस १५ प्राण के जोड़ने से स्वदेशोदय होता है । प्रथम पाद में प्रथम राशि मेष राशि के लङ्कोदय में प्रथम राशि से उत्पन्न चरदल घटावे । वृष राशि अर्थात् द्वितीय राशि के लङ्कोदय में द्वितीय राशि भव चरदल घटावे । तृतीय मिथुन राशि के लङ्कोदय में तृतीय राशि भव चरदल घटावे । और द्वितीय पाद में कर्कट राशि का तृतीय चरदल जोड़े । सिंह राशि के तृतीय राशि के चरदल जोड़े । चतुर्थ पाद में उत्क्रम करके घटावे । गोल के उत्तर उन्नत होने से मीन आदि राशि शीघ्र उदय होती है, अतएव उन में चरदल घटाया जाता है । और कर्कट आदि राशि धीरे २ उदय होती है इस लिये उन में चरदल जोड़ा जाता है ॥२७॥

स्वाहोरात्रेष्टज्यां क्षितिजादवलम्बकाहतांकृत्वा ।
विष्कम्भार्धविभक्ते दिनस्य गतशेषयोश्शसङ्कुः ॥२८॥

क्षितिजात् क्षितिजमण्डलादुत्पन्नां स्वाहोरात्रेष्टज्यां पूर्वाह्णे दिनस्य गतघटिकाभिरानीतामपराह्णे दिनस्य शेषघटिकाभिरानीतामवलम्बकेनाहतां कृत्वा पुनस्तस्मिन् राशौ विष्कम्भार्धेन विभक्ते सति शङ्कुर्भवति। इष्टकाले महाशङ्कुर्भवति । दिनस्य गतशेषयोश्शङ्कुः । अभीष्टदिनगतकालेऽभीष्टदिनेष्यकाले च शङ्कुर्भवति । दिनस्य गतशेषयोस्स्वाहोरात्रेष्टज्यामिति वा सम्बन्धः । अत्रैवं त्रैराशिकम् । यदि त्रिज्यातुल्यस्वाहोरात्रेष्टज्यया लम्बकतुल्यश्शङ्कुर्लभ्यते तदेष्टस्वाहोरात्रेष्टज्यया कश्शङ्कुरितीष्टशङ्कुलब्धिः । विषुवद्दिनमध्याह्ने हि त्रिज्या स्वाहोरात्रेष्टज्या । अवलम्बकश्शङ्कुः । स्वाहोरात्रेष्टज्यानयनन्तु । उत्तर गोले गतगन्तव्यासुभ्यश्चरदलासून्विशोध्य जीवामादाय स्वाहोरात्रार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य लब्धे भूज्यां प्रक्षिपेत् । सा क्षितिजादुत्पन्ना स्वाहोरात्रेष्टज्या भवति । दक्षिणगोले तु चरदलप्रक्षेपभूज्यायाश्शोधनम् । इत्येवं विशेषः । शङ्कुवर्गं त्रिज्यावर्गाद्विशोध्य शिष्टस्य मूलं तस्य शङ्कोश्छाया भवति । शङ्कुच्छाययोर्भुजाकोटित्वादाभ्यां त्रैराशिकादिष्टच्छाया साध्या । छायाया नाडिकाकरणन्तु । द्वादशाङ्गुलशङ्कुना त्रिज्यां निहत्येष्टच्छायाकर्णेन विभज्य लब्धं महाशङ्कुर्भवति । तस्माच्छङ्कुविधिव्यत्ययकर्मणा गतगन्तव्यनाडिका भवन्ति ॥ शङ्क्वग्रानयनमाह ।

भा०ः—क्षितिज मण्डल उत्पन्न स्वाहोरात्रेष्टज्या को पूर्वान्ह में दिन के गत घटिका द्वारा लाये अवलम्बक से गुणन कर, पुनः उस राशि में व्यासार्द्ध से भाग देने पर दिन के गत और गम्य का शङ्कु होगा । अभीष्ट दिन के गत काल में और अभीष्ट दिन के गम्य काल में शङ्कु होता है ॥ २८ ॥

विषुवज्जीवागुणितस्स्वेष्टश्शङ्कुस्स्वलम्बकेन हृतः ।
अस्तमयोदयसूत्राद्दक्षिणतस्सूर्यशङ्क्वग्रम् ॥ २९ ॥

स्वेष्टं महाशङ्कुं स्वदेशविषुवज्ज्यया निहत्य स्वदेशलम्बकेन विभजेत् । तत्र लब्धमस्तोदयसूत्राद्दक्षिणतस्सूर्यस्य शङ्क्वग्रं भवति । नित्यदक्षिणं शङ्क्वग्रं भवति गोलस्योत्तरोन्नतत्वात् । सूर्यग्रहणं चन्द्रस्याप्युपलक्षणम् । अत्रैवं त्रैराशिकम् । यद्यवलम्बककोट्याक्षज्या भुजा तदा शङ्कुकोट्या का भुजेति । उभयत्र क्षेत्रस्याक्षनिमित्तत्वात्त्रैराशिकं घटते । अथवा । लम्बकशङ्कोरक्षज्या भुजा तदेष्टशङ्कोः का भुजेति त्रैराशिकम् ॥ अथार्काग्रानयनमाह ।

भा०ः—स्वेष्ट महाशङ्कु को स्वदेश विषुवज्ज्या से गुणनकर गुणनफल में स्वदेश लम्बक का भाग देवे, भागफल अस्तोदय सूत्र से दक्षिण से सूर्य्य का शङ्क्वग्र होता है। नित्य ही दक्षिण शङ्क्वग्र होता है, गोल के उत्तर उन्नत होने से। सूर्य्य ग्रहण कहने से चन्द्रग्रहण का भी उपलक्षण जानना ॥ २९ ॥

परमापक्रमजीवामिष्टज्यार्धाहतां ततोविभजेत् ।
ज्यालम्बकेन लब्धार्काग्रा पूर्वापरेक्षितिजे॥३०॥

परमापक्रमजीवामिष्टज्यया सायनार्कस्य भुजज्यया निहतां कृत्वा ततो ज्यालम्बकेन लम्बकाख्यजीवया विभजेत्। अवलम्बकेनेत्येवार्थः। तत्र लब्धार्काग्रा भवति। पूर्वापरे क्षितिजे। पूर्वक्षितिजे यत्र रविरुदेति। अपरक्षितिजे यत्र चास्तं गच्छति। तत्स्थानद्वयस्य पूर्वापरस्वस्तिकस्य चान्तरालजाता क्षितिजमण्डलगता जीवार्काग्रेत्यर्थः। अत्रैवं त्रैराशिकम्। यदि त्रिज्यया परमापक्रमो लभ्यते तदेष्टज्यया कियानपक्रम इतीष्टक्रान्तिलब्धिः। यद्यवलम्बकोटिकस्य क्षेत्रस्य त्रिज्या कर्णस्तदेष्टक्रान्तिकस्य क्षेत्रस्य कः कर्ण इत्यर्काग्रालब्धिः। प्रथमत्रैराशिके त्रिज्या हारः। द्वितीये त्रिज्या गुणकारः। अतस्तदुभयं विना कर्म क्रियते ॥ अर्कस्य सममण्डलप्रवेशकाले शङ्क्वानयनमाह।

भा०ः—परमापक्रम जीवा को सायन सूर्य्य की भुजज्या से गुणनकर गुणनफल में लम्बक नामक जीवा का भागदेवे, भागफल अर्काग्रा होता है। पूर्वापर क्षितिज में जहां पर सूर्य्योदय होता एवं अपर क्षितिज में जहां सूर्य्यास्त होता है। अर्थात् उन दोनों स्थान से पूर्वापर स्वस्तिक के बीच से उत्पन्न क्षितिज मण्डलगत जीवा अर्काग्रा होती है ॥ ३० ॥

सा विषुवज्ज्योना चेद्विषुवदुदग्लम्बकेन सङ्गुणिता।
विषुवज्ज्यया विभक्ता लब्धः पूर्वापरे शङ्कुः ॥३१॥

विषुवदुदक् विषुमण्डलादुदग्गता। उत्तरगोलभवा सा। अर्काग्रा। विषुवज्ज्योनाचेत्। विषुवज्ज्योनया क्रान्त्या साधिता चेदित्यर्थः। विषुवज्ज्योनक्रान्तिसिद्धासोदग्गतार्काग्रा लम्बकेन गुणिता विषुवज्ज्यया विभक्ता कार्या। तत्र लब्धं पूर्वापरसूत्रगतेऽर्के शङ्कुर्भवति। सममण्डलशङ्कुरित्यर्थः। सममण्डलगते ह्यर्केऽर्काग्रातुलितं शङ्क्वग्रम्। तत्रैवं त्रैराशिकम्। यद्यक्षतुल्येन शङ्क्वग्रेण लम्बकतुल्यशङ्कुर्लभ्यते तदार्काग्रातुल्येन शङ्क्वग्रेण कःशङ्कुरिति सममण्डल शङ्कुलब्धिः ॥ मध्याह्नशङ्कुं तच्छायाञ्चाह।

भा०ः—विषुवन्मण्डल से उत्तरगत अर्थात् उत्तर गोल से उत्पन्न अर्कांग्रा, विषुवज्ज्या से ऊन क्रान्ति से साधित हो तो विषुवज्ज्या से ऊन क्रान्ति सिद्ध वह उदग्गगताऽर्कांग्रा लम्बक से गुणित विषुवज्ज्या से भाग देवे भाग फल पूर्वापर सूत्रगत सूर्य्य में शङ्कु होता है। अर्थात् सममण्डल शङ्कु होगा॥३१॥

क्षितिजादुन्नतभागानां या ज्या सा परो भवेच्छङ्कुः।
मध्यान्नतभागज्या छाया शङ्कोस्तु तस्यैव ॥३२॥

मध्याह्नकाले दक्षिणक्षितिजादुत्तरक्षितिजाद्वा यावद्भिरंशैरुन्नतोऽर्को भवति तावतां भागानां या ज्या भवति सा परशङ्कुर्भवति। मध्याह्नशङ्कुरित्यर्थः॥ खमध्याद्यावद्भिरंशैरवनतोऽर्को भवति तावतां भगानां या ज्या सा तस्य शङ्कोश्छाया भवति। मध्याह्नच्छायेत्यर्थः। दक्षिणगोले क्रान्तिचापाक्षचापयोर्योगोऽर्कावनतिः। उत्तरगोले तयोर्विवरमर्कावनतिः। अवनतिहीनं राशित्रयमुन्नतिः॥ दृक्क्षेपज्यानयनमाह।

भा०ः—मध्यान्ह काल में दक्षिण क्षितिज से या उत्तर क्षितिज से जितने अंशों करके सूर्य्य उन्नत हो उतने ही अंशों की ज्या होती है, वह शङ्कु होता है। आकाश मध्य से जितने अंशों करके सूर्य्य अवनत होता है, वह उस शङ्कु की छाया होती है। (मध्यान्ह छाया)। दक्षिण गोल में क्रान्ति चाप और अक्षचाप का योग सूर्य्य की अवनति होती है। उत्तर गोल में क्रान्ति चाप और अक्षचाप के अन्तर सूर्य्य की अवनति होती है। अवनत हीन तीनों राशि उन्नति कहाती है॥ ३२॥

मध्यज्योदयजीवासंवर्गे व्यासदलहृते यत् स्यात्।
तन्मध्यज्याकृत्योर्विशेषमूलं स्वदृक्क्षेपः॥३३॥

मध्यलग्नस्य दक्षिणापमधनुरक्षधनुषोर्योगस्य जीवा मध्यज्या। मध्यलग्नस्योत्तरापमधनुरक्षधनुषोरन्तस्य जीवा मध्यज्या। क्षितिजे यत्र तत्काललग्नमुदयति तत्स्थानपूर्वस्वस्तिकयोरन्तरालजीवा सोदयज्येत्युच्यते। सायनलग्नस्य भुजज्यापक्रान्तिहता लम्बकभाजितोदयज्या भवति। संवर्गः परस्परनिहतिः। मध्यज्योदयज्ययोस्संवर्गे व्यासार्धहृते यल्लभ्यते तस्य वर्गं मध्यज्यावर्गाद्विशोध्य शिष्टस्य मूलं स स्वदृक्क्षेपः। यस्य ग्रहस्य रवेश्शशिनो वा मध्यलग्नं परिगृहीतं तस्य दृक्क्षेपज्या भवतीत्यर्थः। दृक्क्षेपलग्नखमध्ययोरन्तरालजीवा दृक्क्षेपज्येत्युच्यते। सूर्यग्रहणे रवेश्चन्द्रस्य च मध्यज्यादृक्क्षेपज्ये पृथक् साध्ये। युक्तिस्त्व-

त्र च्छेद्यके ज्ञेया। तदन्यत्र प्रदर्शितम्। मध्यलग्नन्तु पूर्वाह्ले नतासुभ्यो रविस्थितराशिभागादुत्क्रमेण लङ्कोदयासून्विशोध्य तावतो राशीन् रवौ विशोध्य साध्यम्। अपराह्ले तु नतप्राणेभ्यो रविस्थितभागात् क्रमेण लङ्कोदयासून्विशोध्य तावतो राशीन् रवौ प्रक्षिप्य साध्यम्। दृग्गतिज्यालम्बनयोजनानयनमाह।

भा०ः—मध्य लग्न का दक्षिण अपमधनु और अक्षधनु के योग की जीवा मध्यज्या है। मध्यलग्न के उत्तर अपमधनु और अक्षधनु के अन्तर जीवा मध्यज्या होती है। क्षितिज में जहां तत्काल लग्न उदय होता है। उस स्थान से और पूर्वापरस्वस्तिक के बीच की जीवा उदयज्या है। सायन लग्न की भुजज्या को अपक्रम क्रान्ति से गुणनकर, लम्बक से भागदेवे, भागफल उदयज्या होता है। मध्यज्या और उदयज्या के वर्ग में व्यासार्द्ध से भाग देवे भागफल के वर्ग को मध्यज्या वर्ग से घटावे, अवशिष्ट का मूल निकाले वह स्वदृक् क्षेप होगा। जिस ग्रह का या सूर्य या चन्द्रमा का मध्यलग्न ग्रहण किया जावे उसकी दृक्क्षेपज्या होगी। दृक्क्षेप लग्न और आकाश मध्य के बीच की जीवा दृक्क्षेपज्या होती है। सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण में मध्यज्या और दृक् क्षेपज्या भिन्न २ साधे ॥ ३३ ॥

दृग्दृक्क्षेपकृतिविशेषितस्य मूलं स्वदृग्गतिः कुवशात्।
क्षितिजे स्वा दृक्छाया भूव्यासार्धं नभोमध्यात्॥ ३४ ॥

दृग्भेदहेतुभूता स्वच्छाया दृग्ज्या वा स्वदृग्गतिज्या वा दृक्क्षेपज्या वेत्यर्थः। सा यदि क्षितिजे भवति नभोमध्यात् क्षितिजान्ता भवति। व्यासार्द्धतुल्या भवतीत्यर्थः। तदा कुवशाद्भूमिवशान्निष्पन्नो दृग्भेदो व्यासार्धं भवति। भूव्यासार्धतुल्यं दृग्भेदयोजनमित्यर्थः। अन्तराले अनुपातात् कल्प्यम्। अतो दृग्गतिज्यां भूव्यासार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य गतं दृग्भेदयोजनं भवति। ग्रहणे तल्लम्बनंभवति। दृक्क्षेपज्यां भूव्यासार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य लब्धं ग्रहणे नति योजनं भवति। दृग्ज्यात एवं लब्धं दृङ्मण्डलगतं कर्णरूपं लम्बनयोजनं भवति। अनेन ग्रहणे न व्यवहारः। युक्तिविषयोत्वेतदपि वेद्यम्। लम्बनयोजनं नतियोजनञ्च त्रिज्यया निहत्य स्वेन-स्वेन योजनव्यासेन विभजेत्। तत्र लब्धं तस्य तस्य लम्बनलिप्ता नतिलिप्ताश्च भवन्ति। अर्केन्द्वोर्नतिलिप्तान्तरं सूर्यग्रहणे नतिर्भवति पर्वान्तकालाच्छोध्या। अपराह्ले देया। एवं संस्कृतं पर्वान्तं स्फुटशशिमासान्तमित्युच्यते॥ चन्द्रादीनामुदयास्तलग्नसिद्धये स्वस्वविक्षेपेण दृक्कर्माह।

भा०:—दृग् हेतुभूत अपनी छाया या दृगज्या या दृक् क्षेपज्या है। वह यदि क्षितिज में आकाश मध्य से क्षितिज के अन्त तक होती है। अर्थात् व्यासार्द्ध तुल्य होती है, तब भूमि वशतः निष्पन्न (उत्पन्न) दृग्भेद व्यासार्द्ध होता है। अर्थात् भूव्यासार्द्ध तुल्य दृग्भेद योजन होता है। बीज में त्रैराशिक से कल्पना करे। अतएव दृग्गतिज्या को भूव्यासार्द्ध द्वारा गुणन कर त्रिज्या से भाग देवे भागफल दृग्भेद योजन होता है। ग्रहण में वह लम्बन होता है। दृक्क्षेपज्या को भूव्यासार्द्ध से गुणन कर त्रिज्या से भाग देवे भागफल ग्रहण में नतियोजन होता है। दृग्ज्या से इस प्रकार लब्ध दृङ्मण्डल गत कर्णरूप लम्बन योजन होता है। इस के द्वारा ग्रहण में व्यवहार नहीं किया जाता ॥३४॥

विक्षेपगुणाक्षज्या लम्बकभक्ता भवेदृणमुदक्स्थे।
उदये धनमस्तमये दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे ॥ ३५ ॥

विक्षेपगुणिताक्षज्या लम्बकभाजिता लिप्तात्मकं दृक्फलं भवति। उदक्स्थे। अपमण्डलादुदक्स्थे चन्द्रे। उदये ऋणम्। उत्तरविक्षेप उदयविषये तद्दृक्फलं चन्द्रे ऋणं कार्यमित्यर्थः। अस्तमयविषये तत्फलं चन्द्रे धनं कुर्यात्। दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे। दक्षिणविक्षेप उदयविषये तत्फलं चन्द्रे धनं कार्यम्। तत्कालं चन्द्र एतत् क्रियते। एतदाक्षं दृक्कर्म ॥ आयनं दृक्कर्माह।

भा०:—विक्षेप गुणित अक्षज्या लम्बक से भाग देने पर भागफल लिप्तात्मक दृक्फल होता है। अपमण्डल से उदक्स्थ चन्द्रमा में, उदय में ऋण करना अर्थात् उत्तर विक्षेप में उदय विषय में उस दृक्फल चन्द्रमा में ऋण करना चाहिये। अस्तमय विषय में उस फल को चन्द्रमा में धन करे। दक्षिण विक्षेप उदय विषय में उस फल को चन्द्रमा में धन करे। इस को आक्षदृक् कर्म कहते हैं ॥ ३५ ॥

विक्षेपापक्रमगुणमुत्क्रमणं विस्तरार्धकृतिभक्तम्।
उदगृणधनमुदगयने दक्षिणगे धनमृणं याम्ये॥ ३६ ॥

उत्क्रमणं विक्षेपापक्रमगुणम्। सायनचन्द्रस्योत्क्रमणं कोट्या उत्क्रमज्येत्यर्थः। वह्निक्षेपेण, परमापक्रमेण च निहत्य विस्तरार्धस्य व्यासार्धस्य कृत्या विभजेत्। तत्र लब्धं लिप्तात्मकदृक्फलं भवति॥ उदगृणधनमुदगयने दक्षिणगे। उदगयन उदग्विक्षेपे तत्फलं चन्द्र ऋणं भवति। तत्र दक्षिणगे विक्षेपे तत्फलं चन्द्रे धनं भवति। उदग्दक्षिणगे च क्रमादृणम्। इति योज्यम् ॥ धनमृणं याम्ये।

दक्षिणायनगते चन्द्रे पूर्वक्रमाद्धनमृणञ्च भवति । उदग्विक्षेपे धनम् । दक्षिणविक्षेप ऋणमित्यर्थः । आचार्येण स्थूलरूपं दृक्फलद्वयमिह प्रदर्शितम् । नतु सूक्ष्मरूपमिति वेद्यम् । अस्मात् स्थूलरूपात् सूक्ष्मरूपं युक्त्या सिद्ध्यतीति भावः । यस्य चन्द्रस्योदयास्तलग्नमपेक्षितं तत्र दृक्कर्मद्वयं कार्यं नतु ततोऽन्यत्र ॥ चन्द्रार्कभूमिभूच्छायानामर्केन्दुग्रहणयोश्च स्वरूपमाह ।

भा०ः—विक्षेप क्रमगुण अर्थात् सायन चन्द्रमा के उत्क्रमण की कोटी द्वारा उत्क्रमज्या लावे । उसके विक्षेप और परमापक्रम द्वारा गुणनकर व्यासार्द्ध के कृति (वर्ग) से भाग देवे भागफल लिप्तात्मक दृक्फल होगा । उदगयन उदग् विक्षेप में उसका फल चन्द्रमा में ऋण होता है; उस दक्षिणग विक्षेप में वह फल चन्द्रमा में धन होता है । उत्तर दक्षिणग विक्षेप में क्रम से ऋण होता है । दक्षिणायन गत चन्द्रमा में पूर्व क्रम से धन और ऋण होगा । उत्तर विक्षेप में धन होता है और दक्षिण विक्षेप में ऋण होता है ॥३६॥

चन्द्रो जलमर्कोऽग्निर्मृद्भूश्छायापि या तमस्तद्धि ।
छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूच्छाया ॥ ३७ ॥

चन्द्रो जलात्मकः । अर्कोऽग्निमयः । भूमिर्मृदात्मिका । तस्या भूमेर्या छाया भूच्छायाख्या सा हि तमः । सूर्यं ग्रहणकाले शशी छादयति नतु राहुः । शशिनं ग्रहणकाले महती भूच्छाया छादयति नतु राहुः ॥ ग्रहणकालमाह ।

भा०ः—जल स्वरूप चन्द्रमा, अग्निस्वरूप सूर्य्य, मृत्तिकामय भूमि हैं भूमि की छाया का नाम अन्धकार है । सूर्य्य ग्रहण में चन्द्रमा सूर्य्य को आच्छादित (ढक) कर लेता है; राहु नहीं । और चन्द्रग्रहण में पृथिवी की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है, राहु नहीं ॥ ३७ ॥

स्फुटशशिमासान्तेऽर्कं पातासन्नो यदा प्रविशतीन्दुः ।
भूच्छायां पक्षान्ते तदाधिकोनं ग्रहणमध्यम् ॥ ३८ ॥

स्फुटशशिमासान्ते लम्बनसंस्कृतेऽमावास्यान्तकाले पातासन्नोऽल्पविक्षेपश्चन्द्रो यदार्कं प्रविशति तदाधिकोनं ग्रहणमध्यम् । अधिककालस्याल्पकालस्य चन्द्रग्रहणस्य मध्यं तदा भवतीत्यर्थः । पक्षान्ते पौर्णमास्यन्ते यदा चन्द्रो भूच्छायां प्रविशति तदा चन्द्रग्रहणस्य मध्यं भवति । कैश्चित्तु स्फुटशशिमासान्तं केवलममावास्यान्तं तत्र ग्रहणमूर्ध्वगतं भवति कदाचिदूनमधोगतं भवति । इतिव्या ख्यातम् । भूछायादैर्घ्यमाह ।

भा०:—लम्बन संस्कृत अमावास्या काल में अल्पविक्षेप चन्द्रमा जब सूर्य्य मण्डल में प्रवेश करता है, तब न्यूनतर ग्रहणमध्य होता है। अर्थात् अधिक काल एवं अल्पकाल का चन्द्रग्रहण मध्य होताहै। पौर्णमासी को जब चन्द्रमा, भूच्छाया में प्रवेश करता है, तब चन्द्रग्रहण का मध्य होता है॥ ३८॥

भूरविविवरं विभजेद्भूगुणितन्तु रविभूविशेषेण।
भूच्छायादीर्घत्वं लब्धं भूगोलविष्कम्भात्॥ ३९॥

भूरविविवरमर्कस्य स्फुटयोजनतुल्यं तद्भूगुणितं भूव्यासयोजनगुणितं कृत्वा रविभूविशेषेण रविव्यासयोरन्तरेण योजनात्मकेन, विभजेत्। तत्र लब्धं भूच्छायाया दैर्घ्यं योजनात्मकं भवति। भूगोलविष्कम्भात् भूव्यासार्धात्। भूगोलस्य मध्यात्प्रभृतीदं छायादैर्घ्यं भवतीत्यर्थः॥ भच्छायायाश्चन्द्रकक्ष्याप्रदेशे व्यासयोजनानयनमाह।

भा०:—पृथिवी और सूर्य्य का स्फुट योजन तुल्य भूव्यास योजन गुणित सूर्य्यव्यास और भूव्यास के योजनात्मक अन्तर से भाग देवे, भागफल भू छाया की चौड़ाई योजनात्मक होती है। पृथिवी के व्यासार्द्ध से अर्थात् भगाल के मध्य प्रभृति से यह छाया दैर्घ्य होती है॥ ३९॥

छायाग्रचन्द्रविवरं भूविष्कम्भेण तत् समभ्यस्तम्।
भूच्छायया विभक्तं विद्यात्तमसस्स्वविष्कम्भम्॥ ४०॥

छायाग्रचन्द्रविवरं चन्द्रस्य स्फुटयोजनकर्णेन हीनं छायादैर्घ्यमित्यर्थः। तद्भूव्यासेन निहत्य भूच्छायादैर्घ्येण विभजेत्। तत्र लब्धं चन्द्रमार्गे तमसो भूच्छायायास्स्वविष्कम्भो योजनात्मकव्यासो भवति। तं व्यासं त्रिज्याकर्णेन विभजेत्। तत्र लब्धं लिप्तात्मकस्तमोव्यासो भवति। अर्केन्द्वोश्च स्वयोजनव्यासं त्रिज्याकर्णेन निहत्य स्वस्फुटयोजनकर्णेन विभज्य लब्धं लिप्तात्मकस्वव्यासो भवति॥ स्थित्यर्धानयनमाह।

भा०:—चन्द्रमा के स्फुट योजन से कर्ण घटाकर अर्थात् छाया के लम्बाई को भूव्यास से गुणन कर गुणनफल में भूछाया के लम्बाई से भाग देवे; भागफल चन्द्रमा के मार्ग में तम (अन्धकार) अर्थात् भूछाया का स्वकीय विष्कम्भ अर्थात् योजनात्मक व्यास होगा। उस व्यास को त्रिज्या कर्ण द्वारा भाग देवे, भागफल लिप्तात्मक तमोव्यास होगा। सूर्य्य और चन्द्रमा के अपने २ योजन व्यास को

त्रिज्याकर्ण से गुणन कर गुणनफल में अपने २ स्फुट योजन कर्ण द्वारा भाग देने से भागफल लिप्तात्मक अपना २ व्यास होगा ॥ ४० ॥

सम्पर्कार्धस्य कृतेश्शशिविक्षेपस्य वर्गितं शोध्यम् ।
स्थित्यर्धमस्य मूलं ज्ञेयं चन्द्रार्कदिनभोगात् ॥ ४१ ॥

संपर्कार्धस्य कृतेः । सूर्यग्रहणे सूर्येन्द्वोर्बिम्बयोगार्धस्य वर्गाच्छशिनो विक्षेपस्य वर्गितं शोध्यम् । विशोधयेदित्यर्थः । चन्द्रग्रहणे चन्द्रतमसोर्बिम्बयोगार्धस्य वर्गात् केवलस्य चन्द्रविक्षेपस्य वर्गं विशोधयेत् । तत्र यच्छिष्टं तस्य मूलं स्थित्यर्धं भवति । स्थित्यर्धसाधनमित्यर्थः । तत् कथमित्यत्राह । चन्द्रार्कदिनभोगादिति । तस्मान्मूलात् षष्टिघ्नादर्केन्द्वोर्गत्यन्तरेण स्थित्यर्धनाडिका भवन्तीत्यर्थः । चन्द्रग्रहणे तास्स्फुटा भवन्ति । सूर्यग्रहणे तु स्थित्यर्धकालसम्भूतेन लम्बनकालेन युतास्स्फुटा भवन्ति । मध्यकाललम्बनस्पर्शकाललम्बनयोरन्तरेण युतास्स्पर्शस्थित्यर्धनाडिकास्स्फुटा भवन्ति । तथा मोक्षकाललम्बनमध्यकाललम्बनयोरन्तरेण युता मोक्षस्थित्यर्धनाडिकाश्च स्फुटा भवन्तीत्यर्थः ॥ विमर्दार्धकालानयनमाह ।

भा०:—सूर्यग्रहण में सूर्य और चन्द्रमा के विम्ब के योगार्द्ध के वर्ग से चन्द्रमा के विक्षेपवर्ग को घटावे । चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा के तम विम्ब के योगार्द्ध के वर्ग से केवल चन्द्र विक्षेपवर्ग को घटावे । उस से जो शेष बचे उसका मूल निकालने से स्थित्यर्द्ध होगा । उक्त मूल को ६० से गुणनकर—गुणनफल को सूर्य और चन्द्रमा की गति से अन्तर करने पर स्थित्यर्द्ध नाडिका होगी । चन्द्रग्रहण में वे ही स्फुट होंगी । सूर्यग्रहण में तो स्थित्यर्द्ध काल सम्भूत से लम्बन काल को जोड़ने पर स्फुट होंगी । मध्यकाल लम्बन और स्पर्श काल लम्बन से घटाकर जोड़े तो स्पर्श स्थित्यर्द्ध नाडिका स्फुट होंगी । और मोक्ष काल लम्बन और मध्यकाल लम्बन से घटाकर जोड़ने से मोक्षस्थित्यर्द्ध नाडिका स्फुट होंगी ॥ ४१ ॥

चन्द्रव्यासार्धोनस्य वर्गितं यत्तमोमयार्धस्य ।
विक्षेपकृतिविहीनं तस्मान्मूलं विमर्दार्धम् ॥ ४२ ॥

चन्द्रबिम्बार्धहीनं तमोबिम्बार्धं यत्तस्य वर्गाद्विक्षेपवर्गं विशोध्य यच्छिष्टं तस्मान्मूलं विमर्दार्धं विमर्दसाधनं भवति । तस्मात् षष्टिघ्नादर्केन्द्वोर्गत्यन्तरेण विमर्दार्धकालो नाडिकात्मको भवतीत्यर्थः ॥ ग्रस्तशेषप्रमाणमाह ।

भा०ः—चन्द्रबिम्बार्द्ध हीन तमोबिम्बार्द्ध को जो उसके वर्ग से विक्षेप वर्ग को घटाकर बचे, उस का मूल विमर्दार्द्ध होता है, उसी को विमर्द साधन कहते हैं। उस को ६० से गुणनकर सूर्य और चन्द्रमा की गति से घटानेपर शेषफल विमर्दार्द्ध नाडिका होंगी ॥ ४२ ॥

तमसो विष्कम्भार्धं शशिविष्कम्भार्धवर्जितमपोह्य।
विक्षेपाद्यच्छेषं न गृह्यते तच्छशाङ्कस्य ॥ ४३ ॥

चन्द्रबिम्बार्धं तमोबिम्बार्धाद्विशोध्य शिष्टं विक्षेपाद्विशोधयेत्। तत्र यच्छेषं तत्तुल्यश्चन्द्रस्य भागस्तमसा न गृह्यते। शेषलिप्तासमानलिप्ता न गृह्यन्ते। इत्यर्थः ॥ तात्कालिकग्रासपरिज्ञानमाह।

भा०ः—चन्द्रबिम्बार्द्ध को तमोबिम्बार्द्ध से घटाकर शेषफल को विक्षेप से घटावे जो बचे उसके तुल्य चन्द्रमा का भाग अन्धकार से ग्रसित नहीं होता॥४३

विक्षेपवर्गसहितात् स्थित्यर्धादिष्टवर्जितान्मूलम्।
सम्पर्कार्धाच्छोध्यं शेषस्तात्कालिको ग्रासः ॥ ४४ ॥

(विक्षेपकृतियुतादिष्टकालकोट्यूनस्थित्यर्धकोटेर्वर्गाद्यन्मूलं तत् सम्पर्कार्धकृतेर्विशोध्यम्। तत्र यच्छेषं तत् तात्कालिकग्रासप्रमाणं भवति ॥ स्पर्शमोक्षादिज्ञानमाह। *

भा०ः—विक्षेप वर्ग जोड़ा हुआ, इष्टकाल कोटी से घटाकर स्थित्यर्द्ध कोटी के वर्ग से मूल कर उसे सम्पर्कार्द्ध वर्ग से घटावे—शेषफल तात्कालिक ग्रास होगा ॥४४॥

मध्याह्नात् क्रमगुणितोऽक्षो दक्षिणतोऽर्धविस्तरहृतो दिक्।
स्थित्यर्धाच्चार्केन्द्वोस्त्रिराशिसहितायनात् स्पर्शे ॥ ४५ ॥

(मध्याह्नात् क्रमगुणितोऽक्षोऽर्धविस्तरहृतः। नतज्यया गुणिताक्षज्या त्रिज्यया भक्ता। तच्चापप्रमाणा दिग्भवति।) आक्षवलनं भवति। दक्षिणतो दिङ्मध्याह्नात् (पूर्वभागे) दक्षिणं वलनं भवति। [दक्षिणतो दिक्] प्राक्कपाले रवेस्स्पर्शे दक्षिणवलनं भवतीत्यर्थः। पश्चात्कपाले उत्तरवलनम्। (मध्याह्ने) न दिग्भवति। चन्द्रस्य सूर्यविपरीतं सर्वत्र भवति। एतदक्षवलनं स्थित्यर्धाच्च। स्थित्यर्धशब्देन तन्मूलभूतो विक्षेप उच्यते सूर्यस्य स्फुटनतिश्च वलनं भवति। तस्य नतिवद्दिग्भवति स्पर्शे मोक्षे च। चन्द्रग्रहणे चन्द्रविक्षेपो वलनं भवति।

* पुस्तकद्वयेऽपि व्याख्यानं खण्डितम्। तस्मात्प्रकाशिकाव्याख्यानमिह लिखितम्। "स्थित्यर्धेन्त्रमध्यप्रागतीतकालः। मध्यकालादूर्ध्वमेष्यत्काल इष्टकालः स्थित्यर्धेत्रादिष्टकाल" इति पुस्तकद्वयेऽप्यवशिष्टं खण्डवाक्यम्।

तस्य विक्षेपव्यत्ययात् स्पर्शे मोक्षे च दिग्भवति। अर्केन्द्वोस्त्रिराशिसहितायनात् अयनशब्देनापक्रम उच्यते। त्रिराशिसहितादर्काच्चन्द्राच्च निष्पन्नोऽपक्रमोऽपि तयोरर्केन्द्वोर्वलनं भवति। स्पर्शे। इति ग्रहणे। इत्येवार्थतः। एतदायनंवलनम् अस्य दिक्तु बिम्बस्य मुखेऽयनवद्भवति। चन्द्रस्य स्पर्शेऽयनवत् मोक्षेऽयनव्यत्ययात्। चन्द्राद्व्यत्ययेन सूर्यायनवलनं दिग्भवति। अक्षवलनायनचापयोस्तुल्यदिशोर्योगं कृत्वा भिन्नदिशोरन्तरं कृत्वा जीवामादाय सम्पर्कार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य लब्धे विक्षेपं संस्कुर्यात्। तत् स्फुटवलनं भवति। गृहीतबिम्बस्यान्वर्णानाह।

भा०ः—(मध्यान्ह से क्रम गुणित अक्षार्द्ध विस्तरकृत। नतज्या द्वारा गुणित अक्षज्या से त्रिज्या द्वारा भागदेकर भागफल चाप परिमाणा दिक् होगी) दक्षिण से मध्यान्ह में (पूर्वकाल में) दक्षिण वलन होता है। अर्थात् पूर्व कपाल में सूर्य के स्पर्श में दक्षिण वलन होता है। पश्चिम कपाल में उत्तर वलन होता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण में सर्वत्र उलटा होता है, स्थित्यर्द्ध शब्द से उस का मूलभूत विक्षेप कहा जाता और सूर्य की स्फुट नति वलन होता है। और स्पर्श और मोक्ष में उसके नति तुल्य होता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्रविक्षेप वलन होता है। उस के विक्षेप के व्यतिक्रम (उलटा) से स्पर्श और मोक्ष में दिशा होती है। अयन शब्द से अपक्रम कहा जाता है। तीन राशि सहित सूर्य और चन्द्रमा से निष्पन्न अपक्रम भी सूर्य और चन्द्रमा का वलन होता है। ग्रहण में यह आयनवलन होता है। इस की दिशा तो बिम्ब के मुख में अयन के तुल्य होगी। चन्द्र, ग्रहण के स्पर्श में अयन तुल्य होगा। मोक्ष में अयन के विपर्य्यय से चन्द्रमा से व्यतिक्रम द्वारा सूर्य आयन वलन होता है। आक्ष वलन के दोनों चाप के तुल्य दिशा का योग, कर और यदि भिन्न होतो अन्तर कर चाप लेकर सम्पर्कार्द्ध से गुणन कर त्रिज्या से भाग देवे, भागफल में विक्षेप संस्कार करे तो वह स्फुट वलन होगा ॥ ४५ ॥

प्रग्रहणान्ते धूम्रः खण्डग्रहणे शशी भवति कृष्णः।

सर्वग्रासे कपिलस्स कृष्णताम्रस्तमोमध्ये॥ ४६॥

प्रग्रहणे प्रारम्भे। अन्ते मोक्षे समाप्तौ च। चन्द्रो धूम्रो भवति। खण्डग्रहणेऽर्धबिम्बे गृहीतप्राये कृष्णवर्णः। सर्वग्रासे विमर्दे जाते सति कपिलः। सर्वग्रहणेऽपि तमोमध्यं प्रविशति सति कृष्णताम्र (वर्णश्शशी भवति)। चन्द्रवदर्कस्यापि वर्ण इति प्रकाशिकायामुक्तम् ॥ सूर्य्यग्रहणेऽदृश्यभागमाह।

भा०:—चन्द्रग्रहण के आरम्भ (स्पर्श) और मोक्ष में चन्द्रमा धूम्र वर्ण होता है। खण्ड ग्रहण में अर्थात् बिम्ब के आधा भाग ग्रसित होने पर कृष्ण वर्ण होता, सर्वग्रास में कपिलवर्ण होता, सर्वग्रहण में भी तमोमध्य प्रवेश करने पर कृष्ण एवं ताम्बे का सा रंग होता है ॥ ४६ ॥

सूर्येन्दुपरिधियोगे ऽर्काष्टमभागो भवत्यनादेश्यः।
भानोर्भासुरभावात् स्वच्छतनुत्वाच्च शशिपरिधेः ॥४७॥

सूर्येन्द्वोः परिधियोगे स्पर्शादावर्कबिम्बस्याष्टमभागो ग्रस्तोऽप्यनादेश्यः। द्रष्टुमशक्य इत्यर्थः। तत्र हेतुमाह भानोरिति। सूर्यस्यातिभासुरत्वात् जलमयस्य शशिनः परिधेरत्यच्छत्वाच्च। आसन्नार्करश्मिभिन्नशशिपरिधेरच्छत्वं सम्भवति। अष्टमभागाधिके ग्रस्ते तेनाष्टमांशेन सह ग्रस्तभाग उपलभ्यते॥ एवं स्वशास्त्रप्रतिपादितग्रहगत्यादेर्दृक्संवादात् स्फुटत्वमाह।

भा०:—सूर्य्यग्रहण में—सूर्य्य और चन्द्रमा की परिधि योग में सूर्य्य के अष्टमभाग ग्रस्त सूर्य्य का नहीं दीख पड़ता। इस का कारण यह है कि सूर्य्य के अत्यन्त प्रकाश और जलमय चन्द्रमा की परिधि की स्वच्छता होने से। क्योंकि सूर्य के किरण निकट होने से चन्द्रमा की परिधि की स्वच्छता का सम्भव होता है इसी कारण अष्टम भाग से अधिक ग्रस्त भाग की उपलब्धि होती है ॥४७॥

क्षितिरवियोगाद्दिनकृद्रवीन्दुयोगात्प्रसाधितश्चेन्दुः।
शशिताराग्रहयोगात्तथैव ताराग्रहास्सर्वे ॥४८॥

इह तन्त्र उदितोऽर्को भूरवियोगात् प्रसाधितः। स्फुट इति कल्पितः। यथा पूर्वापरसूत्राग्रे रवेरुदयास्तमयाच्च गोलान्तगतोऽर्क इति कल्प्यते। दक्षिणोत्तरगतिनिवृत्त्यायनगतिश्चेति च पूर्वापरसूत्रगतशङ्कुच्छायया दक्षिणोत्तरगतशङ्कुच्छायया च तात्कालार्कस्साध्यते। एवं चतुर्भिः प्रकारैः परीक्ष्यात्रोदितोऽर्कस्स्फुट इति कल्पितः। इत्यर्थः एवं प्रकाशिकायामुदितम्। एतैः प्रकारभेदैस्सायनार्क एव सिध्येत् नतु दृगानीतः। अयनचलनञ्च प्रतिकालं भिन्नं युक्त्या तत्परिज्ञानञ्च गणितार्कादेव भवति* ॥ शास्त्रस्य मूलमाह।

भा०:—पूर्वापर रेखा के आगे सूर्य्य का उदय होने से गोलान्तर्गत सूर्य्य की ऐसी कल्पना कियी जाती है। और दक्षिण उत्तर के गति निवृत्ति

---

* अतः परं कतिचित्खण्डितवाक्याक्यानि पुस्तकद्वये दृश्यन्ते। तद्यथा। अतः केचिदेवमाहुः'। कृत्तिकादितारकाणां शास्त्रोदितैः --- वांशैश्च तासामुदयलग्नं मध्यलग्नमस्तलग्नञ्च सम्यग्ज्ञात्वा पुनरर्कस्यार्धास्तमये घटिकायन्त्रं संस्थाप्य तेन कृत्तिकादीनां -- द्येन कालेन विशे—

द्वारा " अयन " होता है। पूर्वापर शङ्कुछाया में एवं दक्षिणोत्तर शङ्कुछाया द्वारा तात्कालिक सूर्य्य सिद्ध होता है। एवं बहुत प्रकार से परीक्षा किया हुआ स्फुट सूर्य्य होता है ॥ ४८ ॥

सदसज्ज्ञानसमुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नंस्वमतिनावा ॥ ४९ ॥

सदसज्ज्ञानरत्नवतो ज्योतिश्शास्त्राख्यसमुद्रात् स्वमतिनावा स्वमत्याख्यां नावमारूढेन मया तन्मध्यं प्रविश्य तत्र निमग्नं सज्ज्ञानाख्यमुत्तमरत्नं देवतायास्स्वयंभुवः प्रसादेन सम्यगुद्धृतम्। स्वयंभुवोद्दिष्टार्थप्रकाशनमेव मया कृतमित्यर्थः। संक्षिप्तत्वञ्चात्र सिध्यति ॥ अथोपसंहरति।

भा०:—ज्योतिष् शास्त्र रूपी समुद्र में अपनी बुद्धिरूपी नौका पर सवार होकर समुद्र में निमग्न हो ब्रह्मा की कृपा से सद्ज्ञानरूप रत्न को मैं ने (आर्य्यभट) बाहर किया अर्थात् प्रकाशित किया ॥४९॥

आर्य्यभटीयं नाम्ना पूर्वं स्वायम्भुवं सदा सद्यत्।
सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रतिकञ्चुकं योऽस्य* ॥ ५० ॥

पूर्वमादिकाले यज्ज्योतिश्शास्त्रं वेदात्समुद्धृत्य ग्रन्थेन लोके प्रकाशितमासीत् सदा सर्वदा सद्भूतं तदेव मया नाम्नार्यभटीयमिति तन्त्रं प्रकाशितम्। अस्य शास्त्रस्य यः प्रतिकञ्चुकं कुरुते। दोषोत्पादनेन तिरस्करणमित्यर्थः। तस्य सुकृतायुषोः प्रणाशस्स्यात् ॥

परमादीश्वराख्येन कृतेयं भटदीपिका।
प्रदीप्यतां सदा ज्योतिश्शास्त्रज्ञानां हृदालये ॥

इति भटदीपिकायां गोलपादः।

इत्यार्यभटीयं समाप्तम्।

भा०:—आदि काल में जिस ज्योतिषशास्त्र को वेद से निकालकर लोक में प्रचार किया गया—उसी ज्योतिः शास्त्र को अर्थात् वैदिक ज्योतिष् शास्त्र को, मैं ने (आर्य्यभट) आर्य्यभटीय तन्त्र " नाम से प्रकाशित किया है। इस शास्त्र में जो कोई व्यक्ति मिथ्यादोष दिखला कर इस का तिरस्कार करेगा—उस के सुकृत, पुण्य वा यश और आयु का नाश होगा ॥ ५० ॥

आर्य्यभटीय ज्योतिषशास्त्र पूरा हुआ।

---

*प्रतिकञ्चुको योऽस्य। इति पठनीयम्। दीपिकाव्याख्याया व्याकरणविरुद्धत्वात्।

गौतमीय न्यायशास्त्र सभाष्यसानुवाद—मूल्य ३॥)

वेद, उपवेद और वेद के छः अङ्गों के रक्षार्थ-हमारे ऋषियों ने-छः उपाङ्ग-स्वरूप-छः दर्शन शास्त्र रचे हैं। इन दर्शनों में (अपने २ तरीके पर) वेदोक्त सत्य सनातन धर्म को युक्ति तथा प्रमाणों से बड़े २ नास्तिकों के आक्षेपों का उत्तर देकर-हमारे वेदोक्त धर्म की रक्षा कियी गयी है। इन छः दर्शनों में से सब से अधिक हमारे गौतम ऋषि ने चार्वाक, बौध, आर्हत, जैन आदि मतों का अकाट्य उत्तर दिया है। इस दर्शन में एक बड़ी विलक्षणता है कि इस का ठीक २ समझ लेने पर, शास्त्रार्थ वा बहस की रीति खूब मालूम हो जाती है और चाहे कैसा भी प्रबल नास्तिक क्यों न हो इस शास्त्र के जानने वाले के सामने नहीं ठहर सकता। इस न्यायविद्या को "तर्क," मन्तिक़ या Logic कहते हैं। गौतम मुनि कृत ५३० सूत्रों पर वात्स्यायन मुनिकृत संस्कृत भाष्य का-अत्युत्त सरलभाषानुवाद, स्थान २ पर उपयुक्त टिप्पणी दियी गयी है। और यह प्रति १३ शुद्ध प्रतियों से मिला कर अत्यन्त शुद्ध छापी गयी है। इस में एक और विशेषता है कि इस की भूमिका में आस्तिक और नास्तिक दर्शनों पर युक्ति और प्रमाणों द्वारा विचार लिखा गया है और-छः दर्शनों का परस्पर विरोधाभास-के भ्रम को दूर किया गयाहै। अर्थात् छः दर्शन का 'मुख्य' एक वेदोक्त सत्यधर्म की रक्षा करना-उद्देश्य है यह बात युक्ति, प्रमाण से सिद्ध कियी गयी है।

सामवेदीय-गोभिलगृह्यसूत्र सटीक सानुवाद २॥)

वेद के शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष इन छः अङ्गों में से-"कल्प" नामक अङ्ग वेद के हस्त स्वरूप हैं। अर्थात् वेद का जो प्रधान उद्देश्य-श्रेयस्कर कर्मकाण्ड की प्रवृत्ति कराने में-है उसी का प्रतिपादक गृह्यसूत्र है। चारों वेदों की भिन्न २ शाखा होने से, प्रत्येक शाखाओं के भिन्न २ गृह्यसूत्र हैं। यह गोभिल गृह्यसूत्र-सामवेद की कौथुमी शाखा का-गोभिल-मुनिप्रणीत-स्मार्त्तकर्म की पद्धति स्वरूप है। इस ग्रन्थ में प्रथम सूत्र है। प्रत्येक सूत्र पर संस्कृतटीका, आवश्यकीय स्थानों में टिप्पणी और गर्भाधानादि संस्कारों में जिन वेद मन्त्रों के पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है, वे पूरे २ मन्त्र संस्कृत टीका में रक्खे गये हैं। और भूमिका में वेद, शाखा, सूत्र, गोत्र, प्रवर, आदि पर अत्यन्त उपयोगी विचार किया गया है। सुन्दर चिकने कागज पर नये टायप में, अत्यन्त शुद्ध छपा है।

सूर्यसिद्धान्त भाषाटीका और बृहद्भूमिका सहित मू० २)

यह ग्रन्थ-सिद्धान्त ज्योतिष के उपलब्ध ग्रन्थों में सब प्राचीन सर्व मान्य है। भारतवर्ष में ज्योतिष के अनुसार पञ्चाङ्ग आदि बनने तथा गणित आदि सिद्धान्त ज्योतिष के विषय सम्बन्धी विवाद होने पर-इसी

ग्रन्थ का प्रामाण्य माना जाता है। आज तक इस अमूल्य ज्योतिष के ऊपर ऐसा अपूर्व विचार नहीं किया गया था इस की भूमिका के १५० पृष्ठों में प्रायः संस्कृत ज्योतिष, अङ्गरेजी आदि ज्योतिष, वेद, ब्राह्मणादि पुस्तकों से भारतवर्षीय ज्योतिषशास्त्र का गौरव सिद्ध किया गया है। केवल इस एक ही पुस्तक के पढ़ने से बिना गुरु प्रायः ज्योतिष के। विषयों का ज्ञाता हो सकता है।

पिङ्गलसूत्र सटीक सानुवाद। मूल्य १॥)

वेदार्थ समझने के लिये-छन्दोग्रन्थ की भी आवश्यकता है। स्थान २ में छन्दो विशेष का विधान है, इसी कारण गायत्री उष्णिक, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, इन सात छन्दों का वर्णन तथा मगण, यगण आदि छन्द सम्बन्धी वैदिक तथा लौकिक छन्दों का वर्णन है। विना छन्द ज्ञान के वेद पढ़ना दोष लिखा है तथा विना छन्द ज्ञान के मन्त्रों का अर्थ भी ठीक २ समझ में नहीं आ सकता क्योंकि विना षडङ्ग के वेद का तात्पर्य समझना आहोपुरुषिकामात्र है। यद्यपि श्रुतबोध, वृत्त रत्नाकर आदि भी छन्दोग्रन्थ हैं परन्तु-उन में वैदिक छन्दों का कुछ भी वर्णन नहीं है अतएव हम ने बड़े परिश्रम से-वेद के छः अङ्गों में से पिङ्गलकृत छन्दसूत्र पर हलायुधकृत वृत्ति सहित का अति उपयोगी सरल भाषानुवाद किया है। उत्तम चिकने कागज पर अत्यन्त शुद्ध छपा है।

नीचे लिखे पुस्तक शीघ्र छपेंगे।

१-सिद्धान्तशिरोमणि—पं भास्कराचार्य्य कृत ज्योतिष का ग्र. (गोलाध्याय) संस्कृत टीका और भाषानुवाद एवं उपयुक्त-चित्र सहित मू० २

२-सचित्र भारतवर्षीय प्राचीन भूगोल।

नाम ही से समझ जाइये-वाल्मीकीय तथा महाभारत आदि के समय के देशों की स्थिति का—चित्र, रावण, वालि, तथा भगवान् रामचन्द्र जी के राज्य के भिन्न २ रंग दे कर नकशा छापा जावेगा २॥)

३-सर्वदर्शनसंग्रह-माध्वाचार्यकृत्—जिस में १६ दर्शन और जिस में आस्तिक नास्तिक, दर्शनों का सिद्धान्त लिखा है। संस्कृत और भाषानुवाद सहित और भूमिका में सब दर्शनों पर गूढ़ विचार तथा-अङ्गरेजी में भी प्रत्येक दर्शन का खुलासा लिखा गया है मूल्य—२॥)

इस में नीचे लिखे दर्शन हैं; इन का अलग २ दाम इस प्रकार होगा १ चार्वाक ≡), बौद्ध ≡), आर्हत ।), रामानुज ।), पूर्णप्रज्ञ ≡), पाशुपत =), शैव दर्शन ≡), प्रत्यभिज्ञान =), रसेश्वर =), न्याय =), वैशेषिक =), मीमांसा =) पाणिनीय =), सांख्य =), पातञ्जल ।) और शाङ्करदर्शन ॥) है।

पता-उदयनारायणसिंह—'शास्त्रप्रकाश' कार्य्यालय मधुरापुर, चिउटाहा, मुजफ्फरपुर।



